मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 107 ● वर्ष 12, अंक 2 ● अप्रैल 2022 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

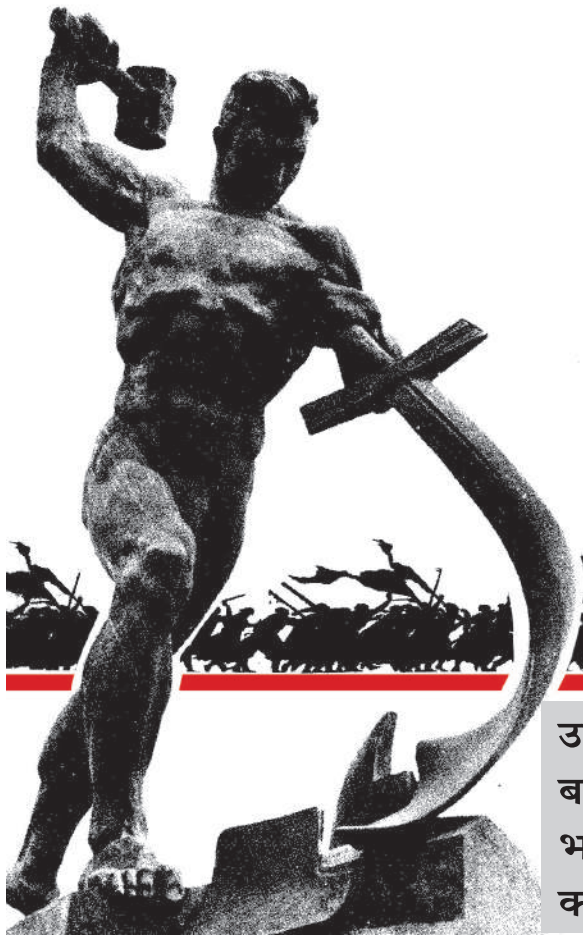

मज़दूर बिगुल

उपराष्ट्रपति महोदय, हम बताते हैं कि "शिक्षा के भगवाकरण में ग़लत क्या है"! 7

भारतीय राज्यसत्ता द्वारा उत्तर-पूर्व में आफ़्स्पा वाले क्षेत्रों को कम करने के मायने 10

कुछ बेहतरीन मज़दूरवर्गीय कविताएँ 14-15

मज़दूर और मेहनतकश दोस्तो! सावधान!

फ़ासिस्ट मोदी सरकार का फ़ार्मूला है : 'ग़रीबों पर टैक्स का बोझ बढ़ाओ + पूँजीपतियों को छूट-रियायतों के तोहफ़े दो + जनता को धर्म के नाम पर उन्माद फैलाकर आपस में लड़ाओ + पूँजीपतियों की हुकूमत को क़ायम रखो!'

इस साज़िश में मत फँसो! अपनी वर्ग एकजुटता बनाओ! असली दुश्मन को पहचानो!

सम्पादक मण्डल

चार राज्यों में विधानसभा चुनावों के समाप्त होते ही मोदी सरकार ने क़रीब दस दिनों तक हर रोज़ पेट्रोल की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी की। अब हालत यह है कि पेट्रोल की क़ीमत 100 का आँकड़ा पार कर चुकी है और डीज़ल की क़ीमत 100 के आँकड़े को छूने के क़रीब जा रही है। हम मज़दूर-मेहनतकश जानते हैं कि पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमत बढ़ने का मतलब है हर चीज़ की क़ीमत बढ़ना। इससे न सिर्फ़ पेट्रोल, डीज़ल, सीएनजी और रसोई गैस की क़ीमतों में सीधे बढ़ोत्तरी होती है, बल्कि लगभग हर सामान की क़ीमत में बढ़ोत्तरी होती है। वजह यह है कि हर सामान के उत्पादन की जगह से बाज़ार तक पहुँचने में परिवहन की भूमिका होती है और पेट्रोलियम उत्पादों के महँगे होने का अर्थ है परिवहन की लागत बढ़ना जो कि माल की क़ीमत में जाता है। कोई भी पूँजीपति इस बढ़ोत्तरी को अपनी जेब से नहीं चुकाता है, बल्कि उसका बोझ जनता के ऊपर डाला जाता है। साथ ही, बहुत-से उत्पादों के उत्पादन में पेट्रोलियम उत्पाद कच्चे माल या मध्यवर्ती/सहायक उत्पाद के रूप में लगते हैं। उन वस्तुओं की क़ीमत भी पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमत में बढ़ोत्तरी के साथ बढ़ती है। संक्षेप में, कुल मिलाकर महँगाई में बढ़ोत्तरी होती है।

सरकार पेट्रोलियम की क़ीमत बढ़ाने के लिए तरह-तरह के तर्क दे रही है, जिस पर हम आगे आयेंगे। अभी बस इतना ही बता दें कि ये तर्क वास्तव में कुतर्क हैं, जो कि सफ़ेद झूठ पर आधारित हैं। ग़ौर करने वाली बात यह है कि जब पेट्रोल की क़ीमतें बढ़ाकर व्यापक मेहनतकश आबादी की जेब पर डाका डाला जा रहा है तो उसी समय उन राज्यों में धार्मिक उन्माद फैलाकर दंगे भड़काये जा रहे हैं, जहाँ चुनाव होने हैं। विक्रम संवत नववर्ष से लेकर रामनवमी व नवरात्र के दौरान देशभर में संघ परिवार की गुण्डा वाहिनियों द्वारा रैलियाँ निकालकर मस्जिदों पर भगवा झण्डा फहराने, भड़काऊ भाषण देने, मुसलमान महिलाओं को बलात्कार की धमकी देने, मुसलमानों पर हमले करने का काम किया गया। इसके वीडियो प्रमाण मौजूद हैं, लेकिन

(पेज 8 पर जारी)

आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों के संघर्ष ने तमाम पूँजीवादी पार्टियों के मज़दूर-मेहनतकश विरोधी चेहरे को बेपर्द किया !

प्रियम्वदा

दिल्ली में 31 जनवरी 2022 से शुरू हुआ आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों का संघर्ष दिल्ली ही नहीं बल्कि पूरे देश के मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में एक आगे बढ़ा हुआ क़दम है। दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन की रहनुमाई में 38 दिनों तक चली ये हड़ताल हर आने वाले दिन के साथ नया इतिहास रचते हुए और अधिक मज़बूत होती रही। अपनी हड़ताल और रैलियों के माध्यम से सड़कों पर उतरे महिलाओं के सैलाब ने न सिर्फ़ दिल्ली में और केन्द्र में बैठे हुक्मरानों की कुर्सियाँ हिला दी थीं, उन्हें भयाक्रान्त कर दिया था और उनकी असलियत को उजागर किया बल्कि इस समूची पूँजीवादी-पितृसत्तात्मक व्यवस्था को भी चुनौती दी। महिला मज़दूरों की इस अभूतपूर्व हड़ताल से बौखलायी दिल्ली सरकार और केन्द्र सरकार ने इसे रोकने के लिए दमनकारी 'हेस्मा' जैसे काले क़ानून का इस्तेमाल किया। इसके साथ ही अपनी वाजिब और न्यायसंगत माँगों के लिए लड़ रही 991 महिलाओं को ग़ैर-क़ानूनी बर्ख़ास्तगी पत्र भी भेजे। स्वयंसेविका माने जाने वाली आँगनवाड़ीकर्मियों की हड़ताल पर 'हरियाणा एस्सेंशियल सर्विसेस मेण्टेनेंस एक्ट (हेस्मा)' लगाना इन सरकारों के दोमुहेपन को और स्पष्ट कर देता है।

हेस्मा का क़ानून क़ायदन सिर्फ़ और सिर्फ़ सरकारी कर्मचारी पर ही लागू होता है, जबकि आँगनवाड़ी में काम कर रही महिलाओं को सरकार सरकारी कर्मचारी नहीं मानती। जहाँ एक तरफ़ सरकार का कहना है कि आँगनवाड़ी महिलाकर्मी समाज में आवश्यक सेवा मुहैया करती हैं, वहीं दूसरी तरफ़ आँगनवाड़ीकर्मियों को न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं मिलती, बल्कि उनसे बेगार खटवाकर नाममात्र का 'मानदेय' दिया जाता है। ज़रूरी सेवा प्रदान कर रही आँगनवाड़ी वर्कर और हेल्पर को सरकार द्वारा दिये जाने वाले 9678 रुपये और 4839 रुपये कहाँ तक जायज़ हैं? उन्हें कर्मचारी का दर्जा देकर उनके काम को पक्का क्यों नहीं किया जा रहा है? इस सवाल पर दोनों ही सरकारों ने अपने आँख और कान बन्द कर लिये हैं। हड़ताल के दौरान ही केजरीवाल सरकार ने घबराकर आँगनवाड़ी वर्करों व हेल्परों के मानदेय को बढ़ाकर क्रमश: रु. 12700 और रु. 6810 किया। लेकिन यह बढ़ा हुआ मानदेय अभी तक आँगनवाड़ी वर्करों व हेल्परों को प्राप्त नहीं हुआ है। यहाँ तक कि आँगनवाड़ी

(पेज 5 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मोदी और केजरीवाल के सारे दावे हवाई हैं

मेरा नाम करन है। मैं दिल्ली के करावल नगर इलाक़े में रहता हूँ। मैं दिल्ली के स्कूल ऑफ़ ओपन लर्निंग से बीए तृतीय वर्ष का छात्र हूँ। मैं अपने बुज़ुर्ग दादा-दादी के साथ रहता हूँ। मेरे दादा गार्ड के तौर पर काम करते थे, अब काफ़ी उम्र हो जाने के कारण वे काम कर पाने में असमर्थ हैं। दिल्ली की गलियों में ताउम्र काम करने के बाद अभी तक दिल्ली सरकार की ओर से उन्हें कोई वृद्धा पेंशन नहीं दी जा रही है। मैंने भी सालों सरकारी दफ़्तर के चक्कर काटे, कई दिन बाद पता चला कि 2018 से ही दिल्ली में वृद्धा पेंशन की योजना बन्द है। परिवार की आर्थिक स्थिति बेहद ख़राब होने के कारण मैं पढ़ाई के साथ काम भी करता हूँ। मैं दिल्ली के भजनपुरा में एक फ़्लैक्स बनाने की कम्पनी में कार्य करता हूँ। मेरी कम्पनी में बैनर, पर्चे, पोस्टर छपने से लेकर प्रिण्टिंग के सारे कार्य होते हैं! यह कम्पनी उत्तर-पूर्वी दिल्ली की सबसे बड़ी फ़्लैक्स की कम्पनी है। जब मैं यहाँ नौकरी का पता करने गया तब मुझे मालिक ने बताया कि 10 घण्टे काम करना पड़ेगा और तनख़्वाह होगी मात्र 8000 रु.। मुझे काम की बहुत ज़रूरत थी, इसलिए मैं आज की इस महँगाई के दौर में भी इतनी कम तनख़्वाह पर काम को तैयार हो गया। कहने के लिए मेरी 10 घण्टे की ड्यूटी है लेकिन आम तौर पर 11 घण्टे तक काम करना पड़ जाता है, जिसका कोई अतिरिक्त पैसा नहीं दिया जाता। यह हालत सिर्फ़ मेरे काम की जगह पर नहीं है, बल्कि आम तौर पर मेरे सारे दोस्त जहाँ भी काम करते हैं, हर जगह हालात यही हैं।

वैसे तो हम जैसे आम लोगों का राग अलापने वाली दिल्ली की केजरीवाल सरकार यह दम्भ भरती है कि दिल्ली में न्यूनतम वेतन 16,064 रु है, लेकिन यह लागू सिर्फ़ काग़ज़ों में होता है। हमारी कम्पनी में कोई मिनिमम वेज लागू नहीं होती। ज़मीनी स्तर पर दिल्ली के अधिकतर उद्योगों के यही हालात हैं। श्रम क़ानून, मिनिमम वेज की खुलकर धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं, और कोई जाँच भी नहीं होती, तनख़्वाह समय से नहीं दी जाती, बारहों घण्टे का हाड़-तोड़ काम होता है, जिसके बीच मात्र एक लंचब्रेक होता है, जिसका समय सिर्फ़ 20 मिनट होता है। काम की पारी भी हर हफ़्ते बदलती रहती है, एक हफ़्ते दिन में काम करना होता है, तो अगले हफ़्ते रात में, ऐसे में सोने उठने का चक्र पूरी तरह से गड़बड़ हो जाता है, जिसका शरीर पर काफ़ी बुरा असर पड़ता है। हमारे यहाँ सरकारी छुट्टियों के अवसर पर भी बाहर से ताला लगाकर अन्दर काम करवाया जाता है। मज़ेदार है कि मेरी ही कम्पनी में पार्टियों के विज्ञापन के पोस्टर्स फ़्लैक्स छपते हैं। आम आदमी पार्टी, कांग्रेस, भाजपा सभी पार्टियों के पोस्टर्स हमारे यहाँ छपते हैं, जिनमें सरकार के हवाई दावे भी होते हैं, और उन पोस्टर्स को बनाने वाले मुझ जैसे मज़दूरों तक भी वे योजनाएँ लागू नहीं होती हैं।

मुझे अपने घर के पास ही कुछ लोग मज़दूर बिगुल अख़बार का प्रचार करते दिखते थे। मैंने शुरू-शुरू में जब बिगुल मज़दूर दस्ता के साथियों को देखा था, तब मैंने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, तब मुझे लगता था ये ऐसे ही कुछ शोर मचा रहे थे। लेकिन एक बार मैंने सोचा कि एक अंक लेकर देखता हूँ, मैंने अख़बार पढ़ा तो पाया कि इसमें दिल्ली सरकार के न्यूनतम वेतन के झाँसे की पोल पट्टी खोली गयी है। मुझे अख़बार के सारे लेख पसन्द आये, वो बातें जानने को मिली जो हमारे आसपास कोई नहीं करता लेकिन हमारी ज़िन्दगी से जुड़ी सबसे ज़रूरी बातें थीं। मैं अख़बार का नियमित पाठक बना, और अब मैं इसका वितरक भी हूँ, मैं ख़ुद आम मज़दूरों के बीच इस अख़बार को लेकर जाता हूँ, उन्हें इसकी अहमियत के बारे में बताता हूँ। आज हम मेहनत करने वालों के लिए बहुत ज़रूरी है कि हम संगठित हों, तभी हम कुछ कर सकते हैं। और यह अख़बार हमें संगठित करने में अहम भूमिका निभा रहा है।

– करन, करावल नगर, दिल्ली

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिए लोगों तक पहुँचें?

तो क़लम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत-से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा मज़दूरों की निर्मम हत्याएँ बदस्तूर जारी हैं

हैदराबाद में कबाड़ गोदाम में लगी आग में झुलसकर 11 मज़दूरों की मौत, एक की हालत गम्भीर

आनन्द

गत 23 मार्च को हैदराबाद के भोईगुड़ा इलाक़े में एक कबाड़ गोदाम में भोर के क़रीब 3 बजे आग लग गयी जिसमें झुलसकर 11 मज़दूरों की मौत हो गयी। एक अन्य मज़दूर अपनी जान बचाने के लिए गोदाम की पहली मंज़िल पर स्थित कमरे से नीचे कूद गया और उसे बेहद गम्भीर हालत में अस्पताल में भर्ती कराया गया है। बताया जा रहा है कि आग इलेक्ट्रिक शॉर्ट-सर्किट की वजह से लगी थी। गोदाम में आसानी से आग पकड़ने वाली तमाम ज्वलनशील चीज़ें (जैसे केबल, अख़बार, प्लास्टिक आदि) पड़ी हुई थीं जिसकी वजह से आग जल्द ही पूरी इमारत में फैल गयी। बिहार के कटिहार और छपरा ज़िले से आकर गोदाम में काम करने वाले 12 मज़दूर गोदाम की पहली मंज़िल पर एक छोटे-से कमरे में रहते थे। पूरे गोदाम में बाहर निकलने के लिए सिर्फ़ एक रास्ता था और गोदाम के ऊपर जिस कमरे में मज़दूर रहते थे उस तक पहुँचने का गोदाम से एक घुमावदार और सँकरी सीढ़ी के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। जब आग लगी तो मज़दूर सो रहे थे और जब तक उन्हें आग का पता चला तब आग बुरी तरह से फैल चुकी थी और बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं बचा था। घटनास्थल के आसपास उपस्थित लोगों से बातचीत करने पर पता चला कि सुबह आठ बजे तक तो वहाँ पर सिर्फ़ एक दमकल भेजी गयी थी। अग्निशमन विभाग का कहना है कि उन्हें किसी ने बताया ही नहीं कि अन्दर मज़दूर रहते थे और कम से कम चार-पाँच घण्टों बाद जब आग बुझी, तब अन्दर पहुँचने पर उन्हें बुरी तरह से झुलसे हुए शरीर दिखाई दिये। स्पष्ट है कि गोदाम चलाने वाले से लेकर उस जगह के मालिक समेत अग्निशमन और पुलिस विभाग व समूचे स्थानीय प्रशासन की अनदेखी साफ़ तौर पर इन मौतों के लिए ज़िम्मेदार है। इसके बावजूद अभी तक इस मामले में कोई गिरफ़्तारी नहीं हुई है। पुलिस का कहना है कि गोदाम चलाने वाले सम्पत नामक व्यक्ति का स्वास्थ्य सही नहीं है इसलिए उसकी गिरफ़्तारी नहीं हुई है।

ज़ख़्मी मज़दूर प्रेम कुमार 20 वर्ष का है और उसकी हालत बेहद गम्भीर बनी हुई है। प्रेम कुमार ने पुलिस को दिये अपने बयान में कहा कि जब उन्हें आग लगने का पता चला तब तक ऊपर के कमरे से नीचे जाने का कोई रास्ता नहीं बचा था इसलिए मज़दूर कमरे में ही रुके हुए थे लेकिन जल्द ही आग उस कमरे तक पहुँच गयी और वे उसमें जलकर राख हो गये। मृतकों में प्रेम कुमार का एक भाई भी शामिल था। ग़ौरतलब है कि मज़दूरों के शरीर इतनी बुरी तरह जल चुके थे कि उनकी शिनाख़्त करना मुश्किल था। प्रेम कुमार ने ही पुलिस के सामने उनकी शिनाख़्त की।

ग़ौरतलब है कि हैदराबाद में ऐसे अनगिनत अस्थायी गोदाम और कारख़ाने बिना किसी लाइसेंस के चल रहे हैं और राज्य सरकार के पास इसका कोई आँकड़ा नहीं है कि ऐसी असुरक्षित जगहों पर कितने मज़दूर काम करते हैं और रहते हैं। जब कोई भयावह दुर्घटना घट जाती है तो एक दिन मीडिया में कवरेज होती है और नेता-मंत्री मज़दूरों की मौत पर घड़ियाली आँसू बहाते हैं। लेकिन उसके बाद कोई और ख़बर सुर्ख़ियों में आ जाती है और लोग उसे भूल जाते हैं। ऐसी अस्थायी जगहों पर सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नहीं किये जाते जिसकी वजह से इस प्रकार की दुर्घटनाएँ बदस्तूर जारी रहती हैं।

देश के विभिन्न इलाक़ों से ऐसे तमाम मज़दूर काम की तलाश में हैदराबाद जैसे शहरों की ओर रुख़ करते हैं। कई मालिक इन मज़दूरों के नाज़ुक आर्थिक हालात का फ़ायदा उठाते हुए उन्हें एक छोटी-मोटी रहने की जगह देकर एहसान जताते हैं, मगर इसके पीछे मालिकों को फ़ायदा ये होता है कि काम करने के लिए उन मज़दूरों की उपलब्धता बढ़ जाती है जिससे वे उनसे ज़्यादा काम कराते हैं और रहने की जगह देने की आड़ में मालिक उन्हें मज़दूरी भी कम देते हैं। बढ़ती महँगाई और कमरों के लगातार बढ़ते भाड़े की वजह से कई मज़दूरों को भी लगता है कि गोदाम या फ़ैक्टरी में रहने से उनकी जेब में थोड़ा पैसा बचेगा क्योंकि भाड़े का ख़र्च बच जायेगा। ग़ौरतलब है कि मालिक ख़ुद कभी भी काम करने वाली जगह पर नहीं रहते, क्योंकि अक्सर ऐसी जगहें इन्सानों के रहने लायक़ नहीं होती हैं। जहाँ पर एक आदमी भी बमुश्किल रह सकता हो, उन जगहों पर कई-कई मज़दूर साथ में रहने के लिए मजबूर होते हैं। इन जगहों पर अव्वलन तो सुरक्षा का कोई भी इन्तज़ाम नहीं होता है, और अगर वह होता भी है तो वह मालिक की सम्पदा के लिए होता है, नाकि मज़दूरों के लिए।

मालिकों की मुनाफ़ाख़ोरी की हवस में ये कोई पहला हादसा नहीं हुआ है और न ही यह हैदराबाद तक सीमित है। नोएडा, ग़ाज़ियाबाद, दिल्ली से लेकर चेन्नई और बंगलूरू तक पूरे देश में हर साल इस तरह के हादसों में मज़दूर अपनी जानें गँवाते रहते हैं। हादसों के बाद उपजे असन्तोष को क़ाबू करने के लिए सरकारें छोटी-मोटी आर्थिक मदद करके किनारा कर लेती हैं और साल-दर-साल हादसे बदस्तूर जारी रहते हैं। इस हादसे के बाद भी तेलंगाना की टीआरएस सरकार ने हताहत हुए सभी मज़दूरों के परिवारों को पाँच-पाँच लाख रुपयों की भीख देने की घोषणा कर दी है, पर असलियत यह है कि ख़ुद मुख्यमंत्री के. चन्द्रशेखर राव समेत सरकार के कई विधायक पूँजीपति मालिक वर्ग से आते हैं और उनकी सामाजिक-आर्थिक नीतियाँ भी मालिक वर्ग की सेवा में होती हैं। यही वजह है कि ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की सनक में कारख़ानों और गोदामों में मज़दूरों की सुरक्षा के लिए कोई इन्तज़ाम नहीं किये जाते हैं। इसलिए हैदराबाद में गोदाम में लगी आग से मज़दूरों की हुई मौत महज़ हादसा नहीं, बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के द्वारा की गयी ठण्डी निर्मम हत्याएँ हैं।

करौली में साम्प्रदायिक हिंसा आरएसएस-भाजपा की सुनियोजित साज़िश

रवि

विगत 2 अप्रैल को विक्रम संवत नववर्ष के अवसर पर विहिप व संघ परिवार के द्वारा पूरे देश में अनेक स्थानों पर भड़काऊ रैलियों व जुलूसों का आयोजन किया गया जिनका मक़सद था आम जनता को धर्म के आधार पर बाँटकर वोटों के ध्रुवीकरण की ज़मीन तैयार करना। राजस्थान के करौली शहर में भी संघ परिवार व विहिप के द्वारा बाइक रैली निकाली गयी। यह रैली जब हटवाड़ाबाज़ार में मुस्लिम इलाक़े में पहुँची तो डीजे पर कानफाड़ू आवाज़ में मुस्लिम-विरोधी गाने बजाये जा रहे थे व मुस्लिम-विरोधी नारे लगाये जा रहे थे। इस उकसावे के कारण आक्रोशित कुछ मुस्लिम लोगों ने बाइक रैली पर पथराव किया। बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक हिंसा भड़की। उपद्रव में 1 मकान और 35 दुकानें जला दी गयी। 40 से ज़्यादा लोग घायल हो गये। उपद्रवियों ने 30 से ज़्यादा बाइक तोड़ दीं। पूरे शहर में कर्फ़्यू लगा दिया गया। इस पूरे मामले में 10 FIR दर्ज हुई हैं। 23 आरोपी गिरफ़्तार हुए हैं। इसमें 36 लोगों को नामज़द किया गया है जिसमें 19 मुस्लिम और 17 हिन्दू हैं। इनमें जयपुर नगर निगम (ग्रेटर) की मेयर सौम्या गुर्जर के पति व बीजेपी नेता राजा राम गुर्जर तथा करौली के निर्दलीय पार्षद मतलूब अहमद के ख़िलाफ़ भी मामला दर्ज है। राजस्थान के डीजीपी मोहन लाल लाठेर के अनुसार, "रैली में कुछ लोगों ने हिंसा भड़काने वाले नारे लगाये थे। डीजे की अनुमति नहीं थी फिर भी रैली में डीजे बज रहा था।" 'द वायर' की रिपोर्ट के अनुसार भी रैली में अल्पसंख्यक-विरोधी व कट्टरपन्थी नारे लगाये गये थे। जैसे कि "भारत में रहना होगा तो जय श्रीराम कहना होगा" और "अब टोपी वाला भी बोलेगा जय श्रीराम"।

इस साम्प्रदायिक हिंसा में पुलिस प्रशासन की भी घोर नाकामी सामने आयी है। रैली में डीजे बिना अनुमति के बज रहा था उस पर पुलिस प्रशासन ने कोई कार्रवाई नहीं की। रैली का रूट डाइवर्ट नहीं किया गया रैली को मुस्लिम इलाक़ों से गुज़रने दिया और जब रैली हुई तो सिर्फ़ 30 पुलिसकर्मियों की ड्यूटी थी जो कि उपद्रव रोकने के लिए नाकाफ़ी था।

दरअसल करौली हिंसा भाजपा व संघ परिवार की एक सुनियोजित साज़िश थी। पूर्वी राजस्थान में विधानसभा सीटों पर भाजपा का जनाधार बहुत कमज़ोर है। अगर पिछले 2018 के विधानसभा चुनावों के नतीजों को भी देखें तो पूर्वी राजस्थान की 39 विधानसभा सीटों में से भाजपा को सिर्फ़ 4 सीटें मिली थीं बाक़ी सीटें कांग्रेस, बसपा व निर्दलीयों के हिस्से में आयी थीं। इसीलिए पूर्वी राजस्थान के सवाई माधोपुर में बीजेपी का राष्ट्रीय अध्यक्ष जेपी नड्डा आया था। संघ परिवार व बीजेपी की योजना करौली के रास्ते पूरे पूर्वी राजस्थान में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करना है क्योंकि राजस्थान में विधानसभा चुनाव भी ज़्यादा दूर नहीं हैं। साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के सहारे बीजेपी पूर्वी राजस्थान में अपनी ज़मीन मज़बूत करना चाहती है और राजस्थान की सत्ता पर क़ाबिज़ होना चाहती है। पूर्वी राजस्थान की डेमोग्राफ़ी देखेंगे तो पता चलता है की यहाँ मुख्यत: मीणा, गुर्जर, दलित व मुस्लिम आबादी है और इनमें आपसी तनाव कम है। लेकिन भाजपा अपने साम्प्रदायिक एजेण्डा को लागू करना चाहती है। इससे पहले भी पूर्वी राजस्थान में साम्प्रदायिक दंगा भड़काने की कोशिश हो चुकी है। 2004 में विहिप के प्रवीण तोगड़िया व अशोक सिंघल ने साम्प्रदायिकता भड़काने की कोशिश थी। 2019 में भी हिन्दूवादी संगठनों ने रैली निकालकर साम्प्रदायिक दंगा भड़काने की कोशिश की। लेकिन मेहनतकश जनता की पहलक़दमी ने इस कोशिश को नाकाम कर दिया था। राजस्थान में साम्प्रदायिक हिंसा पूरे देश में संघ परिवार व बीजेपी द्वारा साम्प्रदायिकता व ध्रुवीकरण के प्रयासों की एक कड़ी है। इससे पहले कर्नाटक में हिजाब के मुद्दे पर, हलाल के मुद्दे पर, मस्जिदों के लाउडस्पीकर पर विवाद पैदा करके पूरे देश में साम्प्रदायिकता का माहौल बनाना व ध्रुवीकरण करना है। ताकि जनता अपने असली मुद्दे भूल जाये। जिस हिसाब से महँगाई बढ़ रही है उस स्थिति में जनता के भीतर जो ग़ुस्सा है वो शासक वर्गों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल नहीं हो इसलिए जनता को दूसरे ग़ैर-ज़रूरी मुद्दों की तरफ़ डाइवर्ट किया जा रहा है। ताकि जनता अपने असली दुश्मनों को पहचान नहीं सके इसलिए एक नक़ली दुश्मन मुस्लिम के रूप में खड़ा किया जा रहा है।

करौली साम्प्रदायिक हिंसा के बाद भाजपा से तमाम नेताओं ने करौली का दौरा किया व भड़काऊ बयान दिये ताकि ध्रुवीकरण किया जा सके। प्रदेश की कांग्रेस सरकार ने भी इस हिंसा से निपटने में लापरवाही बरती है। पुलिस प्रशासन भी एक तरह से हिन्दू कट्टरपन्थी संगठनों के पक्ष में ही काम कर रहा था उसका एक कारण पुलिस प्रशासन में भी आरएसएस की घुसपैठ होना है। साथ ही, इस प्रकार की कार्रवाइयों पर कांग्रेसी सरकारें भी सख़्त कार्रवाई करने से डरती हैं कि कहीं भाजपा उन्हें हिन्दू-विरोधी के तौर पर पेश करने में कामयाब न हो जाये। यही कारण है कि कई सबूतों के बावजूद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को एक आतंकवादी संगठन के तौर पर कांग्रेस की केन्द्र सरकारों ने कभी प्रतिबन्धित नहीं किया, सिवाय महात्मा गाँधी की हत्या के तत्काल बाद। लेकिन बाद में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर से प्रतिबन्ध हटा भी दिया गया क्योंकि भारत के पूँजीपति वर्ग को इन फ़ासीवादियों की ज़रूरत है ताकि मेहनतकश जनता को बाँटा जा सके, उसके आन्दोलनों को तोड़ा जा सके और धार्मिक उन्माद फैलाकर पूँजीपतियों के राज की हिफ़ाज़त की जा सके। करौली में हुई साम्प्रदायिक हिंसा संघ परिवार की इसी घिनौनी राजनीति का नतीजा है। रामनवमी के मौक़े पर भी उन्हीं राज्यों में साम्प्रदायिक दंगे करवाये गये जिन राज्यों में चुनाव होने वाले हैं। स्पष्ट है कि लगातार बढ़ती महँगाई और बेरोज़गारी से जनता का ध्यान भटकाकर साम्प्रदायिक उन्माद और मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाकर अपने पक्ष में वोटों का ध्रुवीकरण करना भाजपा का मक़सद है। लेकिन हम मेहनतकशों को इस साज़िश में नहीं फँसना चाहिए। धार्मिक उन्माद में बहकर हम अपने ही वर्ग भाइयों का ख़ून बहायेंगे तो मालिकों, धन्नासेठों और पूँजीपतियों की साज़िश बार-बार कामयाब होती रहेगी। इस बात को हम जितनी जल्दी समझ लें उतना बेहतर है।

सवर्णवादी वर्चस्ववाद और गुण्डागर्दी का फिर शिकार हुआ एक दलित युवक

आशीष

राजस्थान के पाली ज़िले का रहने वाला एक दलित युवक जितेन्द्र पाल मेघवाल पूँजीवाद ब्राह्मणवाद के नापाक गठजोड़ का शिकार हो गया। पाली ज़िले के बाली स्थित सरकारी अस्पताल में कार्यरत जितेन्द्र विगत 15 मार्च को हॉस्पिटल में ड्यूटी करने के बाद अपने सहकर्मी के साथ मोटरसाइकिल से घर वापस लौट रहा था। लौटने के क्रम में दो स्वर्णवादी गुण्डों ने चाकू से उसपर कई वार किये। इलाज के दौरान जितेन्द्र की मौत हो गयी, मौत से पहले उन्होंने परिजनों को सूरज सिंह एवं रमेश सिंह नामक अपराधियों के बारे में बताया।

मृतक के परिजनों ने कहा है कि जितेन्द्र तनी हुई मूछें रखते थे, यह बात गाँव के स्वर्ण समाज के लोगों के लिए स्वीकार्य नहीं था। कोई दलित व्यक्ति बढ़िया कपड़ा पहने, मूछें रखे यह बात उन्हें कैसे हज़म हो सकती है जिनके दिमाग़ में जातिवाद के गन्दे कीड़े भरे हों! लगभग दो साल पहले किसी मुद्दे पर मृतक और दोनों आरोपियों के बीच विवाद हुआ था। जितेन्द्र ने इस मामले की रिपोर्ट भी दर्ज करवायी थी। उस विवाद के समय से ही ये दोनों स्वर्णवादी गुण्डे इस बात से परेशान थे कि कोई दलित उसके सामने आँखें उठाकर कैसे बात कर सकता है! दोनों आरोपी मामले को वापस लेने के लिए बराबर धमकी देते रहते थे। लेकिन जितेन्द्र बहादुरी से अड़ा रहा। मामला वापस नहीं लिये जाने की क़ीमत जितेन्द्र ने अपनी जान देकर चुकायी।

यह कोई पहली या आख़िरी घटना नहीं है, जब किसी दलित को इस क़िस्म के बर्बर तरीक़े से मारा गया हो। पहले भी कभी मूछें रखने के कारण, तो कभी शादी में घोड़ी चढ़ने के कारण, तो कभी गरबा देखने के कारण और भी ना जाने कितने ऐसे वाहियात कारणों से कई दलितों को अपनी ज़िन्दगी से हाथ धोना पड़ा है। जो लोग बहुजन एकता या ओबीसी-दलित एकता की बात करते हैं, उन्हें इस तथ्य पर अवश्य ग़ौर करना चाहिए कि ऐसी तमाम वारदातों को अंजाम देने का काम स्वर्ण जाति से आने वाले लोग या ज़्यादातर मध्य जातियों से आने वाले उच्च वर्ग के लोग करते हैं तथा इसका शिकार 100 में से 99 मामलों में मेहनतकश दलित होते हैं। ज़्यादातर मामलों में अपराधी को सज़ा नहीं मिल पाती क्योंकि इन्हें पुलिस प्रशासन से लेकर बड़े-बड़े बुर्जुआ चुनावबाज़ राजनीतिक पार्टियों के नेताओं से संरक्षण प्राप्त होता है। जब तक हम ऐसी घटनाओं का वर्गीय और मज़दूर-विरोधी चरित्र नहीं पहचानते, तब तक हम उनके ख़िलाफ़ लड़ भी नहीं सकते। जातिवादी विचारों का प्रभाव मज़दूरों के बीच भी होता है। हम मज़दूरों को यह समझ लेना चाहिए कि हमारा दुश्मन दलित नहीं है, बल्कि सभी जातियों के मज़दूरों को लूटने वाला पूँजीपति वर्ग और अमीर वर्ग है। जातिवाद हमें आपस में ही बाँटकर लड़ाता है, ताकि हम एकजुट होकर अपने असली दुश्मन के ख़िलाफ़ लड़ न सकें। दूसरी तरफ़, शासक चाहे दलितों के बीच पैदा हुए छोटे-से अमीर वर्ग से आता हो या फिर स्वर्णवादी हो, उनके बीच दरवाज़े पीछे गलबहियाँ जारी रहती हैं। आप स्वयं देख सकते हैं कि किस प्रकार बहुजन समाज पार्टी की मायावती से लेकर जस्टिस पार्टी के उदित राज और रामविलास पासवान जैसे नेता किस प्रकार सबसे ज़्यादा दलित-विरोधी पार्टी भाजपा की गोद में जा बैठते हैं। वहीं हमें आपस में जातियों में बाँटकर रखा जाता है, ताकि हम ग़ैर-मुद्दों पर आपस में सिर-फुटौव्वल करते रहें।

बहरहाल, इस मामले में भी पुलिस का कहना है कि घटना का कारण पुरानी रंजिश है। ऐसा कहकर पुलिस प्रशासन समाज में पसरे हुए जातिवाद की घृणित मानसिकता पर पर्दा डालने का प्रयास कर रहा है। अभी फ़िलहाल दोनों आरोपी गिरफ़्तार कर लिये गये हैं लेकिन पीड़ित परिवार को न्याय मिलेगा इसकी कितनी उम्मीद की जा सकती है? राज्य में कांग्रेस पार्टी की सरकार है। इससे पहले भी 2020 में मूछें रखने के कारण बीकानेर में प्रदीप कुमार नामक एक दलित युवक की हत्या कर दी गयी थी तथा मूछें रखने के कारण कई सारे दलितों को पिटाई का भी सामना करना पड़ा, गहलोत सरकार प्रशासन इसको रोकने में नाकाम रहा है।

जब से केन्द्र में फ़ासीवादी मोदी सरकार सत्ता में आयी है तब से पूरे देशभर में दलित-विरोधी एवं अल्पसंख्यक-विरोधी घटनाओं में ज़बर्दस्त वृद्धि हुई है। आज भाजपा की साम्प्रदायिक फ़ासीवाद सरकार पूँजीपतियों को मज़दूरों की लूट की खुली छूट दे रही है, निजीकरण के ज़रिए बेरोज़गारी बढ़ा रही है, ग़रीब किसानों को उजाड़ रही है, महँगाई और भ्रष्टाचार को बढ़ा रही है और देश के श्रम और प्राकृतिक संसाधनों को देशी-विदेशी पूँजी के लिए लूट का खुला चरागाह बना रही है। ऐसे में साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के लिए ज़रूरी है कि वह देश के मज़दूरों, निम्न मध्यवर्ग और ग़रीब किसानों के सामने एक काल्पनिक शत्रु यानी नक़ली दुश्मन खड़ा करे। दलितों व धार्मिक अल्पसंख्यकों को शत्रु के रूप में खड़ा करना इन ब्राह्मणवादी फ़ासीवादी ताक़तों का पुराना तरीक़ा रहा है। दलितों, आदिवासियों व अन्य अल्पसंख्यकों को "महान प्राचीन हिन्दू संस्कृति", "महान सनातन धर्म" के लिए ख़तरा बताना और महँगाई और भ्रष्टाचार का कारण बताना और साथ ही उन्हें "राष्ट्र का शत्रु" बताना आसान होता है। यही कारण है कि ब्राह्मणवादी भारतीय पूँजीवादी सत्ता हमेशा ही दलितों और धार्मिक व अन्य अल्पसंख्यकों को एक काल्पनिक शत्रु के रूप में खड़ा करती है, ताकि पूँजीवाद द्वारा पैदा की गयी बेरोज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी, असुरक्षा के लिए लोग पूँजीवाद को निशाना बनाने की बजाय, अपनी प्रतिक्रिया का निशाना इन अरक्षित समुदायों को बनायें। ग़ैर-दलित मज़दूर-मेहनतकश आबादी व आम जनता जो ब्रह्मणवादी मानसिकता की शिकार हो जाती है ख़ासकर उनके बीच इन फ़ासीवादी चालों की असलियत को बताना होगा।

इसके साथ ही हमें इस बात पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि दलितों की आबादी के बीच से निकले पाँच से छह फ़ीसदी लोग जो आज सुविधाभोगी बन चुके हैं, वह शासक वर्ग का हिस्सा हैं उन्हें आज विशेष दिक़्क़तों का सामना नहीं करना पड़ रहा है, इसलिए वह जाति से मुक्ति की लड़ाई में हमारे साथ नहीं आयेगा। दलितों के बीच से निकली हुई यह सुविधाभोगी जमात इस प्रकार की घटना पर केवल ज़ुबानी जमा ख़र्च ही से काम चला लेती है, सड़क पर उतरकर संघर्ष करने का माद्दा इसके भीतर कहीं से भी मौजूद नहीं है। अस्मिता या पहचान की राजनीति से भी जाति उन्मूलन सम्भव नहीं है, क्योंकि आप जब दलितों को एक हो जाने की अपील करते हैं तो दूसरी विरोधी अस्मिता भी एकजुट होती है। एक बात और ग़ौर करने लायक़ है आज भी दलितों की 90 फ़ीसदी आबादी शहरी या ग्रामीण मज़दूर हैं। खेतिहर मज़दूरों का 47 प्रतिशत हिस्सा दलित आबादी का है। कुल मज़दूर आबादी का भी क़रीब 30 प्रतिशत हिस्सा दलित मज़दूर हैं। 80 प्रतिशत से ज़्यादा दलित छात्र ग़रीबी के चलते अपनी स्कूली पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते। ऐसे में, यह समझना बेहद आसान है कि दलित उत्पीड़न का एक स्पष्ट वर्ग चरित्र है। यह ज़रूर है कि वह मज़दूर जो कि दलित है, वह किसी भी अन्य मज़दूर से ज़्यादा शोषित है क्योंकि उसकी सामाजिक स्थिति ज़्यादा कमज़ोर है। कहा जा सकता है कि हर मज़दूर शोषित है लेकिन दलित मज़दूर अपनी अरक्षित सामाजिक स्थिति के कारण अति-शोषित है और साथ ही, हर दलित जातिगत अपमान का दंश झेलता है लेकिन मेहनतकश दलित जातिगत उत्पीड़न के बर्बरतम रूपों का शिकार होते हैं क्योंकि वे वर्गीय तौर पर मज़दूर वर्ग से आते हैं।

इन आँकड़ों से साफ़ स्पष्ट होता है कि वर्गीय दृष्टिकोण को छोड़कर पहचान या अस्मिता के आधार पर जातिगत भेदभाव को ख़त्म नहीं किया जा सकता। सिर्फ़ अर्ज़ियाँ लिखने, संविधान की दुहाई देने से जातिवाद के क़िले को नहीं गिराया जा सकता है, इस रास्ते से जातिवाद के ख़ात्मे के बारे में सोचना एक व्यवहारवादी सोच है। व्यवहारवादी सोच वाले लोग यह मानते हैं कि राज्यसत्ता या सरकार के द्वारा ही कोई बदलाव होता है लेकिन वास्तव में स्थिति अलग है समाज में कोई भी बड़ा बदलाव सत्ता से प्रार्थना करके नहीं बल्कि जुझारू तरीक़े से विरोध करके या विद्रोह करके किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि बदलाव ऊपर से नहीं बल्कि जनता के द्वारा होता है व्यवहारवादी लोग इस बात को नहीं समझ पाते हैं।

भारतीय समाज में फैली जाति प्रथा के ख़िलाफ़ संघर्ष के लिए वर्ग आधारित जाति विरोधी आन्दोलन को खड़ा करने की आवश्यकता है तब जाकर ऐसी दलित विरोधी घटनाओं की संख्या में कमी आ सकती है। एक बात और हमें गांठ बांध लेनी चाहिए कि मेहनतकश लोगों की वर्ग एकता के दम पर ही ब्राह्मणवादी ताक़तों को हराया जा सकता है, जाति का सम्पूर्ण अन्त पूँजीवादी व्यवस्था के दायरों के भीतर असम्भव है। बिना क्रान्ति किये जाति उन्मूलन सम्भव नहीं! बिना जाति-विरोधी संघर्ष के क्रान्ति सम्भव नहीं!

हरियाणा में राजकीय मॉडल संस्कृति स्कूल का मतलब शिक्षा का और बाज़ारीकरण

आशु

पिछले दिनों हरियाणा में खट्टर सरकार ने शिक्षा के बाज़ारीकरण के लिए एक और क़दम उठाया।

ज्ञात हो कि हरियाणा प्रदेश में लगभग 1000 से ज़्यादा प्राथमिक स्कूलों को मॉडल संस्कृति स्कूल में बदलने का फ़ैसला लिया गया था। इस वर्ष से मॉडल संस्कृति स्कूल में छात्रों से एडमिशन फ़ीस 500 रुपये व हर माह 200 रुपये फ़ीस का प्रावधान किया गया है जो सीधे तौर पर 'शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009' के तहत मिलने वाली मुफ़्त शिक्षा के अधिकार का उल्लघंन है। हम जानते हैं कि 'शिक्षा अधिकार अधिनियम-2009' की धारा (3) में 6-14 वर्ष की उम्र के प्रत्येक बच्चे को अपने पड़ोस के स्कूल (नेबरहुड स्कूल) में निशुल्क व अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा पाने का पूरा अधिकार है। साथ ही धारा (6) में भी स्पष्ट किया गया है कि कक्षा 1-5 तक के लिए 1 किलोमीटर के दायरे में स्कूल स्थापित करना सरकार की ज़िम्मेदारी है।

दूसरी बात इन स्कूलों में एडमिशन की शर्त है कि छात्रों को केवल अंग्रेज़ी माध्यम से ही पढ़ाई करनी होगी। ये नियम भी सरकार की नयी शिक्षा नीति का उल्लघंन करता है क्योंकि एक तरफ़ तो नयी शिक्षा नीति के तहत मातृ/क्षेत्रीय भाषाओं में बुनियादी शिक्षा देने की बात की जाती है दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ी माध्यम थोपकर छात्रों को मातृभाषा में पढ़ने से वंचित किया जा रहा है। यानी जो परिवार फ़ीस नहीं दे सकता है या जो बच्चे अंग्रेज़ी माध्यम में नहीं पढ़ना चाहते उन छात्रों से सरकार शिक्षा के अधिकार को छीन रही है। ये क़दम भी भाजपा-संघ परिवार के नक़ली राष्ट्रवाद की पोल खोल रहा है।

वहीं हरियाणा में कार्यरत एक अध्यापक ने बताया कि पिछले 7 साल से सरकार 'स्वच्छ भारत अभियान' का ढिंढोरा पीट रही है जबकि काफ़ी स्कूलों में सफ़ाई कर्मचारी ही नहीं हैं! कुछ स्कूलों में ना तो कोई कच्चा सफ़ाई कर्मचारी है और ना कोई पक्का। ऐसे में कई जगह स्कूल के अध्यापक ही पैसे इकट्ठे करके ठेके पर किसी मज़दूर से काम करवा रहे हैं। अभी मेवात और मोरनी हिल में टीचर की इतनी कमी है कि सरकार ने एक सर्कुलर जारी करके 10 प्रतिशत वेतन ज़्यादा देकर अन्य क्षेत्रों से टीचर को भेजने का फ़ैसला किया है। ऐसे में जिन स्कूलों से टीचर जायेंगे उन स्कूल में टीचरों की कमी हो जायेगी। लेकिन सरकार द्वारा मॉडल स्कूलों में भी टीचर को बिना नयी भर्ती किये सामान्य स्कूलों से ही भेजा जा रहा है जो आने वाले दिनों में सरकारी स्कूलों में ही एक ग़ैर-बराबरी पैदा कर देगा। आज हरियाणा के सरकारी स्कूलों में 34 हज़ार से ज़्यादा शिक्षकों के नियमित पद ख़ाली पड़े हैं तमाम स्कूलों में प्रधानचार्यों से लेकर स्टाफ़ की कमी है। जबकि हरियाणा में पढ़े-लिखे बेरोज़गार नौजवानों की बहुत अधिक संख्या है जिनकी पक्की भर्ती करके स्कूल शिक्षा को बेहतर किया जा सकता है लेकिन सभी पूँजीवादी पार्टियों का मक़सद है शिक्षा का बाज़ारीकरण करना। ऐसे में हरियाणा के इन्साफ़पसन्द लोगों को शिक्षा के बाज़ारीकरण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठानी चाहिए। हमारी माँग होनी चाहिए 1.) मॉडल संस्कृति स्कूलों में फ़ीस व अंगेज़ी माध्यम की बाध्यता ख़त्म की जाये 2) सरकार द्वारा संचालित सभी स्कूल में 'एक समान-स्कूल' की व्यवस्था की जाये 3) शिक्षा के बजट में बढ़ोत्तरी की जाये 4) प्रदेश में ख़ाली पड़े शिक्षकों के पदों पर तत्काल नियमित भर्ती की जाये और अस्थाई तौर पर काम कर रहे शिक्षकों को नियमित किया जाये।

आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों के संघर्ष ने तमाम पूँजीवादी पार्टियों के मज़दूर-मेहनतकश विरोधी चेहरे को बेपर्द किया!

(पेज 1 से आगे)

केन्द्रों का किराया तक केजरीवाल सरकार नहीं दे रही है।

ग़ौरतलब है, कि केवल तात्कालिक तौर पर हेस्मा के मद्देनज़र आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपनी हड़ताल को स्थगित किया है व इस दमनकारी क़ानून को यूनियन ने उच्च न्यायालय में चुनौती दी है। न्यायालय का फ़ैसला आने तक हड़ताल स्थगित हुई है मगर आन्दोलन अपने नये रूप में जारी है। यदि अदालत इस मसले पर न्याय नहीं करती तो दिल्ली की 22,000 आँगनवाड़ी कर्मचारी हेस्मा तोड़कर हड़ताल पर जायेंगी क्योंकि जब अन्याय ही क़ानून बन जाये तो विद्रोह हमारा अधिकार और ज़िम्मेदारी बन जाता है। इस बीच दिल्ली में कार्यरत आँगनवाड़ीकर्मियों ने यह ऐलान किया है कि वे आने वाले निगम चुनाव में भाजपा और आम आदमी पार्टी का पूर्ण बहिष्कार करेंगी। न सिर्फ़ आँगनवाड़ी महिलाकर्मी इन चुनावबाज़ पार्टियों की वोटबन्दी करेंगी, बल्कि इनके परिवार और रिश्तेदार भी भाजपा और आप का बहिष्कार करेंगे। 'नाक में दम करो अभियान' के तहत आँगनवाड़ी की महिलाएँ दिल्ली की सड़कों पर उतरकर सक्रिय बहिष्कार अभियान चला रही हैं। दिल्ली की जनता को इन हुक्मरानों की असलियत से परिचित करा रही हैं। यह भी ग़ौरतलब है कि आम आदमी पार्टी ने पहले निगमों के एकीकरण के ज़रिए निगम चुनावों को निलम्बित किये जाने के सवाल पर भाजपा का विरोध किया था लेकिन अब इन दोनों पार्टियों ने मिलकर निगम चुनावों को अनिश्चितकाल के लिए निलम्बित कर दिया है क्योंकि इन्हें पता है कि पूरे शहर में इनके ख़िलाफ़ आँगनवाड़ीकर्मियों ने जो 'नाक में दम करो अभियान' चला रखा है, उसके कारण पूरे शहर में इन दोनों ही पार्टियों की थू-थू हो रही है। अभी चुनाव न होना ही इन दोनों को अब फ़ायदेमन्द नज़र आ रहा है।

आँगनवाड़ी कामगारों की जायज़ माँगों की पूर्ति करने के बजाय भाजपा और 'आप' ने मिलकर हड़ताल पर हेस्मा लगाया व ग़ैर-क़ानूनी टर्मिनेशन किये, वहीं दूसरी तरफ़ भाजपा का प्रदेश अध्यक्ष आदेश गुप्ता आँगनवाड़ीकर्मियों की तकलीफ़ों पर घड़ियाली आँसू बहाने की नौटंकी कर रहा है। 2018 में प्रधानमंत्री मोदी द्वारा की गयी रु. 1500 व रु. 750 रुपये की मामूली बढ़ोत्तरी, चार साल बाद भी लोगों तक क्यों नहीं पहुँची है, इस सवाल पर भाजपा और उसके नेता-मंत्री चुप्पी साधे बैठे हैं। इनकी नौटंकियों को आँगनवाड़ीकर्मी बख़ूबी समझती हैं। भाजपा शासित राज्यों में आँगनवाड़ीकर्मियों की हालत कुछ बेहतर नहीं है। अधिकांश भाजपा शासित राज्यों में आँगनवाड़ीकर्मियों को मिलने वाला मानदेय 8000 रुपये के आसपास है, जो कहीं से भी सम्मानजनक नहीं है। भाजपा सरकार चाहे तो आँगनवाड़ी के काम की नियमित प्रकृति और आवश्यकता को देखते हुए उन्हें तत्काल सरकारी कर्मचारी घोषित कर सकती है और उन्हें सभी सुविधाएँ मुहैया करा सकती है। भाजपा का यह पाखण्ड अब किसी से छुपा हुआ नहीं है।

ख़ुद को आम आदमी की हितैषी बताने वाली केजरीवाल की सरकार ने 991 महिलाओं को काम से निकालकर यह कहना शुरू किया है कि वे आँगनवाड़ीकर्मियों की माँगों को पूरा करने के लिए हर सम्भव कोशिश कर रहे हैं। इनके ढोंग को 38 दिनों तक चली इस हड़ताल ने उघाड़कर रख दिया। तमाम ग़ैर-ज़रूरी मुद्दों पर भाजपा के साथ 'तू नंगा-तू नंगा' का खेल खेलने वाली केजरीवाल सरकार ने आँगनवाड़ीकर्मियों के दमन के लिए भाजपा के साथ मिलकर अपने असल रंग को दिखला दिया है। भाजपा और 'आप' ने आँगनवाड़ी महिलाओं क साथ जो किया है, यह पहले डीटीसीकर्मी, डॉक्टर, नर्स, शिक्षकों और मज़दूरों के साथ भी कर चुके हैं। केजरीवाल सरकार की सभी नीतियाँ जनता को भरमाने का काम करती हैं। चाहे वह दिल्ली में स्कूल का मॉडल हो, डीटीसी बसों में महिलाओं के टिकट फ़्री करने का या फिर फ़्री पानी और बिजली का। असल बात तो यह है कि ये जनता की एक जेब में चवन्नी डालकर उनकी दूसरी जेब से रुपया ऐंठने का काम करते हैं। मेहनतकश जनता पर अप्रत्यक्ष करों का बोझ डालकर सारा पैसा अपने चुनाव प्रचार पर ख़र्च करने का काम करते हैं और धन्नासेठों की सेवा में लगाते हैं। पंजाब में आँगनवाड़ीकर्मियों से बड़े-बड़े वायदे करने वाली आम आदमी पार्टी की सरकार का मज़दूर और महिला विरोधी चेहरा हमारे सामने है। सरकार बनने के महीनेभर बाद अब इन्हें आँगनवाड़ी की महिलाओं से किये गये वायदे को पूरा करने की कोई सुध नहीं है। उल्टे हर वायदे पर आम आदमी पार्टी और केजरीवाल पंजाब की जनता को बता रहे हैं कि वे वायदे तभी पूरे कर सकते हैं, जबकि मोदी की केन्द्र सरकार उन्हें फ़ण्ड दे! यह पंजाब की जनता के साथ भद्दा मज़ाक़ और धोखा है।

आँगनवाड़ी कामगारों की ऐतिहासिक हड़ताल के दौरान चली सियासी जमातों की पूरी सरकस में कांग्रेस भी अपना करतब दिखाने से बाज़ नहीं आयी। एक तरफ़ तो राहुल गाँधी ने आँगनवाड़ीकर्मियों की माँगों

को जायज़ ठहराते हुए अपना रोना रोया और दूसरी तरफ़ कांग्रेस के नेता व अधिवक्ता अभिषेक मनु सिंघवी को दिल्ली व केन्द्र सरकार की दमनकारी नीति का अदालत में बचाव करने के लिए भेजा। इस हड़ताल ने यह बात दिखला दी है कि जब कभी मेहनतकश वर्ग एकजुट होता है, तब सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ अपने आपसी झगड़े भुलाकर मेहनतकशों के संघर्ष को कुचलने के लिए एकजुट हो जाती हैं। असल बात यह है कि इस हड़ताल ने वह किया जो समूचे शासक वर्ग और उसकी सभी पार्टियों को भयाक्रान्त करता है: शासक वर्ग के प्राधिकार की पूर्ण अवहेलना। दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने इनकी चौधराहट, रसूख़ और हनक की कोई परवाह किये बिना इन्हें इनकी औक़ात दिखायी। यही वह चीज़ है जो सिर्फ़ केजरीवाल सरकार को ही नहीं, बल्कि भाजपा और कांग्रेस को भी भयाक्रान्त कर रही है। साथ ही मज़दूरों का लाल रंग देखकर वैसे भी इन्हें चक्कर आने लगते हैं और इस हड़ताल ने 38 दिनों के दौरान पूरी दिल्ली को लाल रंग में रंग दिया था। यह शासक वर्ग और उनकी पार्टियों के दिल में ख़ास तौर पर खलबली पैदा कर रहा था। यही कारण है कि इन स्त्री मज़दूरों के हौसले की बुलन्दी देखकर आम आदमी पार्टी, भाजपा और कांग्रेस के बौने एकजुट हो गये।

आम आदमी पार्टी की दिल्ली सरकार और भाजपा की केन्द्र सरकार के इस दमनकारी रवैये को 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पेर्स यूनियन' ने न्यायालय में चुनौती दी है और इस देश की न्याय व्यवस्था को अपनी स्वतंत्रता और पक्षधरता साबित करने का मौक़ा दिया है। मेहनतकशों की लूट पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजी और श्रम के बीच जारी संघर्ष में न्यायालय के अधिकांश फ़ैसले पूँजी के पक्ष में होते हैं। हमारे दिमाग़ मे यह बात बैठा दी जाती है कि सरकार की ज़्यादतियों पर नियंत्रण के लिए न्यायपालिका मौजूद है, मगर इस देश का मज़दूर-मेहनतकश अपनी ज़िन्दगी के हालातों से यह बख़ूबी समझता है कि मौजूदा समाज में न्याय प्रणाली एक पूँजीवादी न्याय प्रणाली ही है और अन्तत: वह पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी सरकारों के हितों की ही सेवा करती है, हालाँकि वह किंचित मामलों में जनदबाव के समक्ष तात्कालिक तौर पर उनके ख़िलाफ़ फ़ैसला सुनाने को मजबूर भी हो सकती है। जनता ने अपने संघर्ष के बूते जो थोड़े-बहुत अधिकार हासिल किये थे, उन्हें भी बचाने में भारतीय न्यायपालिका अक्षम रही है। जिन श्रम क़ानूनों को बनवाने के लिए मज़दूरों ने अपनी क़ुर्बानियाँ दीं, उन श्रम क़ानूनों को लचर बनाये जाने के ख़िलाफ़ इस देश की न्यायपालिका ने एक शब्द तक नहीं बोला, बल्कि कई मामलों में सरकार और पूँजीपतियों के पक्ष में फ़ैसला दिया।

आज के फ़ासीवादी दौर में न्याय व्यवस्था का चरित्र और अधिक साफ़ हुआ है। बर्बर हत्यारों से लेकर, नरसंहार करने वाले और बलात्कारी आज खुलेआम घूम रहे हैं, जबकि अपना हक़ माँग रहे लाखों निर्दोष और इन्साफ़पसन्द लोग सलाख़ों के पीछे हैं। हमारे पास कई उदाहरण मौजूद हैं, जिसमें न्यायपालिका ने शासक वर्ग के हितों की सेवा की है और मज़दूरों के हक़-अधिकार और उनके आन्दोलन को कुचलने का काम किया है। हमें यह बात स्पष्ट तौर पर समझ लेनी चाहिए कि स्वतंत्रता और निष्पक्षता की बात करने वाली ये संस्थाएँ शोषण और लूट पर टिकी मौजूदा व्यवस्था को ही और गहराई से स्थापित करने का काम करती हैं। यदि अदालत सभी ग़ैर-क़ानूनी बर्ख़ास्तगियों को रद्द नहीं करती है और हेस्मा जैसे काले क़ानून को वापस नहीं लेती है, तब दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मी अपनी जायज़ माँगों की पूर्ति के लिए एक बार फिर हड़ताल पर जाने को मजबूर होंगी।

मज़दूर-मेहनतकश अपने संघर्ष के जूझारू इतिहास से यह बात बख़ूबी समझता है कि असल में जीत तभी मिलती है जब आन्दोलन सड़कों पर जारी रहता है। आँगनवाड़ी की स्त्री कामगारों ने यह तय किया है कि जब तक फ़ैसला उनके हक़ में नहीं होता सड़कों पर आन्दोलन जारी रहेगा। इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था और सरकार के ख़िलाफ़ लड़ने का यही एकमात्र रास्ता हो सकता है कि हम सड़कों पर उतरकर अपने संघर्ष को और तेज़ करें।

दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों की अनूठी मुहिम : नाक में दम करो अभियान

वृषाली

दिल्ली की सैंकड़ो महिलाकर्मी 16 मार्च से तकरीबन रोज़ ही दिल्ली के अलग-अलग इलाक़ों में एक अनूठा अभियान चला रही हैं। इस अभियान का नाम है 'नाक में दम करो' अभियान। इस अभियान के ज़रिए आँगनवाड़ीकर्मी विशेष तौर पर आम आदमी पार्टी और भाजपा के कार्यालयों पर विरोध प्रदर्शन करती हैं। ज्ञात हो कि दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों की 31 जनवरी से 38 दिनों तक चली ऐतिहासिक हड़ताल पर 'आप' और भाजपा ने मिलीभगत से हेस्मा (हरियाणा एसेंशियल सर्विसेज़ एक्ट) थोप दिया था। इसके बाद आँगनवाड़ीकर्मियों की यूनियन ने हेस्मा के ख़िलाफ़ न्यायालय में केस किया और हड़ताल को न्यायालय के फ़ैसले तक स्थगित किया और स्पष्ट किया कि अगर न्यायालय इस काले क़ानून को रद्द नहीं करती तो दिल्ली की 22000 आँगनवाड़ीकर्मी हेस्मा की परवाह किये बिना दुबारा हड़ताल पर जायेंगी। लेकिन तब तक संघर्ष जारी रहेगा और पूरे शहर में आम आदमी पार्टी और भारतीय जनता पार्टी के नेताओं, दलालों का जीना मुश्किल किया जायेगा।

हज़ारों आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपनी इस हड़ताल में कई नये मुक़ाम हासिल किये। लोभ-लालच, भीखनुमा मानदेय बढ़ोत्तरी, दलाल यूनियन से फ़र्ज़ी वार्ता व फ़र्ज़ी बर्ख़ास्तगी पत्र तक से भी दिल्ली सरकार इस हड़ताल को तोड़ने में नाकामयाब ही रही। अन्ततः आम आदमी पार्टी व भाजपा ने राज्यपाल के ज़रिए हड़ताल पर हेस्मा क़ानून लगा दिया, हालाँकि हड़ताल अभी भी ख़त्म नहीं हुई है, बल्कि केवल स्थगित है। हड़ताल ने पूँजीवादी व्यवस्था की कार्यशैली और विधायिका के साथ-साथ कार्यपालिका के चरित्र को भी बेपर्द कर दिया। इस हड़ताल में यह भी साफ़ हो गया कि वोटबैंक की राजनीति के नाम पर 'तू नंगा-तू नंगा' का खेल खेलने वाली तमाम पार्टियाँ असल में एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। दिल्ली में 'आप' और 'भाजपा' का अन्तरविरोध बस नौटंकी है। जब मज़दूरों के दमन की बात आती है तो तमाम बुर्जुआ पार्टियाँ गलबहियाँ करने में नहीं हिचकती हैं। एक ओर भाजपा और कांग्रेस आन्दोलनरत आँगनवाड़ीकर्मियों के समर्थन की दुहाई देते रहे। वहीं दूसरी ओर भाजपा हड़ताल पर थोपे काले क़ानून हेस्मा लगाये जाने में भागीदार रही और कांग्रेस के प्रवक्ता व सांसद अभिषेक मनु सिंघवी 991 आँगनवाड़ीकर्मियों के फ़र्ज़ी टर्मिनेशन के ख़िलाफ़ दिल्ली हाई कोर्ट में चल रहे केस के लिए दिल्ली सरकार की पैरवी कर रहे हैं! कांग्रेस क्यों एक मरी गाय में तब्दील होती जा रही है, उसे समझना आसान है। उसके पीछे इसी प्रकार की हरकतें हैं।

हड़ताल पर हेस्मा लगाये जाने के बाद ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से, बदले की भावना से टर्मिनेट की गयीं 991 आँगनवाड़ीकर्मियों के लिए उनकी यूनियन दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन न सिर्फ़ क़ानूनी लड़ाई लड़ रही है, बल्कि सड़कों पर इन ग़ैर-क़ानूनी बर्ख़ास्तगी और हेस्मा थोपे जाने के विरोध में आन्दोलन भी कर रही है। 'नाक में दम करो' अभियान इसी आन्दोलन का हिस्सा है जिसमें पहले ही नंगी हो चुकी 'आप', 'भाजपा' व 'कांग्रेस' की असलियत का दिल्ली की जनता के सामने भी भण्डाफोड़ किया जाता है। इसके साथ ही विशेष तौर पर 'आप' और 'भाजपा' (क्योंकि सत्तासीन पार्टियाँ यही हैं) के कार्यालयों, विधायकों, मौजूदा निगम पार्षद व उम्मीदवार के कार्यालयों का घेराव किया जाता है। दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपनी हड़ताल के दौरान ही यह

ऐलान कर दिया था कि उनकी माँगों की सुनवाई और लिखित तौर पर एक निश्चित समय-सीमा में उन पर कार्रवाई का आश्वासन न देने वाली तमाम पार्टियों का आगामी दिल्ली नगर निगम चुनाव में सक्रिय बहिष्कार किया जायेगा। इन तमाम पार्टियों को न केवल आँगनवाड़ीकर्मी व उनके परिवारों के बहिष्कार का सामना करना पड़ेगा बल्कि दिल्ली की आम जनता के बीच भी इन पार्टियों की मज़दूर व आँगनवाड़ीकर्मी विरोधी नीतियों के पर्दाफ़ाश के कारण जवाब देने को मजबूर किया जायेगा।

बहिष्कार अभियान के तहत ही दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने वोट माँगने से पहले 'आप' और भाजपा को एक ख़ास चेतावनी भी दे दी है। यूनियन की ओर से जारी एक स्टिकर का कहना है कि :

"सावधान! ज़रूरी सूचना!

"यह एक आँगनवाड़ीकर्मी का घर है। आम आदमी पार्टी और भारतीय जनता पार्टी के पार्षद उम्मीदवार, नेता, विधायक, मंत्री और कार्यकर्ता इस घर में वोट या चन्दा माँगने के लिए आने की जुर्रत न करें। इन दोनों पार्टियों का निगम चुनावों में पूर्ण बहिष्कार है। इस दरवाज़े के पीछे ही जूतों की माला टंगी है। फिर भी अगर दरवाज़ा खटखटाया तो उसी से तुम्हारा स्वागत किया जायेगा। तुम्हें जो हानि होगी उसके लिए तुम ख़ुद ज़िम्मेदार होगे।

धन्यवाद!"

इस अभियान से ज़ाहिर तौर पर 'आप' और 'भाजपा' दोनों ही घबरायी हुई हैं। इन अभियानों के बाद भाजपा ने घड़ियाली आँसू और तेज़ी से बहाने शुरू कर दिये हैं। भाजपा कभी प्रेस कॉन्फ्रेंस तो कभी विरोध प्रदर्शन और राज्यपाल से मिलने की नौटंकी कर रही है। आम आदमी पार्टी की हालत भी पतली है और जहाँ कहीं 'नाक में दम करो' अभियान की टोलियाँ पहुँच रही हैं, वहाँ इनके नेता और कार्यकर्ता हाथ-पाँव जोड़ने लग रहे हैं।

अभियानों के दौरान आँगनवाड़ीकर्मियों को न केवल दिल्ली की जनता से सकारात्मक प्रतिक्रिया मिल रही है, बल्कि कई अभियानों में जनता की मदद भी मिल रही है। यही नहीं, कई इलाक़ों में अभियानों के लिए जनता की ओर से भी प्रस्ताव भेजे जा रहे हैं। दिल्ली की हज़ारों आँगनवाड़ीकर्मियों की ऐतिहासिक हड़ताल का निश्चित तौर पर यह अन्त नहीं है। आन्दोलन और संघर्ष अभी भी जारी है। हड़ताल पर थोपे गये हेस्मा के ख़िलाफ़ फ़िलहाल क़ानूनी लड़ाई जारी है। और यदि विधायिका-कार्यपालिका की ही तरह न्यायपालिका का चरित्र भी नंगा हो जाता है, तो जैसा कि दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन ने घोषणा की है, हेस्मा को तोड़ते हुए भी स्थगित की गयी हड़ताल फिर से शुरू कर दी जायेगी।

हड़तालों के बारे में

(पेज 13 से आगे)

हैं, और जहाँ उनके समाजवादियों के साथ सम्बन्ध होते हैं और उनके ज़रिए पर्चे और पैम्फ़लेट हासिल कर सकते हैं। रूस में ऐसे मज़दूर अभी बहुत कम हैं, उनकी तादाद बढ़ाने के लिए हर चेष्टा की जानी चाहिए, ताकि मज़दूर वर्ग का धयेय जन साधाारण को बताया जा सके, उन्हें समाजवाद तथा मज़दूर वर्ग के संघर्ष से अवगत कराया जा सके। समाजवादियों तथा वर्ग-सचेत मज़दूरों को इस उद्देश्य के लिए समाजवादी मज़दूर वर्ग पार्टी संगठित कर यह कार्यभार संयुक्त रूप से सँभालना चाहिए। तीसरे, जैसाकि हम देख चुके हैं, हड़तालें मज़दूरों को बताती हैं कि सरकार उनकी शत्रु है, कि सरकार के विरुद्ध संघर्ष चलाते रहना चाहिए। वस्तुत: हड़तालों ने ही धीरे-धीरे तमाम देशों के मज़दूर वर्ग को मज़दूरों के अधिकारों तथा समग्र रूप में जनता के अधिकारों के लिए सरकारों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना सिखाया है। जैसाकि हम कह चुके हैं, केवल समाजवादी मज़दूर पार्टी ही मज़दूरों के बीच सरकार तथा मज़दूर वर्ग के धयेय की सच्ची अवधारणा का प्रचार करके यह संघर्ष चला सकती है। किसी और अवसर पर हम ख़ास तौर पर इस बात की चर्चा करेंगे कि रूस में हड़तालें किस तरह संचालित होती हैं और वर्ग सचेत मज़दूरों को कैसे उनका उपयोग करना चाहिए। यहाँ हम यह इंगित कर दें कि हड़तालें जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, स्वयं युद्ध नहीं, वरन 'युद्ध का विद्यालय' हैं, कि हड़तालें संघर्ष का केवल एक साधन हैं, मज़दूर वर्ग आन्दोलन का केवल एक रूप हैं। अलग-अलग हड़तालों से मज़दूर श्रम करने वाले तमाम लोगों की मुक्ति के लिए पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष की ओर बढ़ सकते हैं और उन्हें बढ़ना चाहिए, और वे वस्तुत: तमाम देशों में उस ओर बढ़ रहे हैं। जब तमाम वर्ग-सचेत मज़दूर समाजवादी हो जायेंगे, अर्थात जब वे इस मुक्ति के लिए प्रयास करेंगे, जब वे मज़दूरों के बीच समाजवाद का प्रसार कर सकने, मज़दूरों को अपने दुश्मनों के विरुद्ध संघर्ष के तमाम तरीक़े सिखा सकने के लिए पूरे देश में ऐक्यबद्ध हो जायेंगे, जब वे एक ऐसी समाजवादी पार्टी का निर्माण करेंगे, जो सरकारी उत्पीड़न से समग्र जनता की मुक्ति के लिए, पूँजी के जुए से समस्त मेहनतकश जनता की मुक्ति के लिए संघर्ष करती है, केवल तभी मज़दूर वर्ग तमाम देशों के मज़दूरों के उस महान आन्दोलन का अभिन्न अंग बन सकेगा, जो समस्त मज़दूरों को ऐक्यबद्ध करता है तथा जो लाल झण्डा ऊपर उठाता है, जिस पर ये शब्द लिखे हुए हैं : "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!"

1899 के अन्त में लिखित।
पहले पहल 1924 में
प्रकाशित। अंग्रेज़ी से अनूदित।

* हम उद्योग में संकटों तथा मज़दूरों के लिए उनके महत्तव की अन्यत्र विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। हम यहाँ केवल इतना कहेंगे कि हाल के वर्षों में रूस में औद्योगिक स्थिति ठीक-ठाक रही है, उद्योग "फल-फूल" रहा है, परन्तु अब (1899 के अन्त में) इस बात के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे हैं कि इस "फलने-फूलने" का अन्त संकट के रूप में होगा : वस्तुओं की बिक्री में कठिनाइयाँ, फ़ैक्टरी मालिकों का दिवालिया होना, छोटे मालिकों का तबाह होना तथा मज़दूरों के लिए भयानक विपदाएँ (बेरोज़गारी, कम मज़दूरी, आदि)।

उपराष्ट्रपति महोदय, हम बताते हैं कि "शिक्षा के भगवाकरण में ग़लत क्या है"!

लता

हाल ही में देश के उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने कहा कि शिक्षा के भगवाकरण में बुरा क्या है और लोगों को अपनी औपनिवेशिक मानसिकता छोड़कर शिक्षा के भगवाकरण को स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन सच्चाई तो यह है कि सारे भगवाधारी उपनिवेशवादियों के चरण धो-धोकर सबसे निष्ठा के साथ पी रहे थे और इनके नेता और विचारक अंग्रेज़ों से क्रान्तिकारियों के बारे में मुख़बिरी कर रहे थे और माफ़ीनामे लिख रहे थे। इसलिए अगर औपनिवेशिक मानसिकता को छोड़ने की ही बात है, तो साथ में भगवाकरण भी छोड़ना पड़ेगा क्योंकि भगवाकरण करने वाली ताक़तें तो अंग्रेज़ों की गोद में बैठी हुई थीं और उन्होंने आज़ादी की लड़ाई तक में अंग्रेज़ों के एजेण्टों का ही काम किया था। जो वास्तव में क्रान्तिकारी थे और उपनिवेशवादियों के ख़िलाफ़ लड़ रहे थे, उनका स्पष्ट कहना था कि किसी धार्मिक प्रतीक या रंग को कभी देश का प्रतीक नहीं बनाया जा सकता है। वे भगवाकरण और हर प्रकार के धार्मिक प्रतीक या रंग में देश की पहचान को रंगे जाने के ख़िलाफ़ थे। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू जैसे महान क्रान्तिकारी संघ और हिन्दू महासभा जैसे संगठनों के बारे में क्या सोचते थे ये सभी को पता है। उनका स्पष्ट मानना था कि धर्म हर व्यक्ति का अपना निजी मसला होना चाहिए और देश की पहचान किसी धर्म के साथ नहीं बननी चाहिए। इसलिए वेंकैया नायडू के इस बयान का असली मक़सद संघ परिवार के फ़ासीवादी एजेण्डा को आगे बढ़ाना है, जनता की चेतना का साम्प्रदायिकीकरण करना है, जनता को धर्म पर बाँटना है। यह साज़िश बड़े पैमाने पर संघ परिवार चला रहा है, जैसा कि हालिया तमाम घटनाओं से स्पष्ट होता है।

रामनवमी के अवसर पर देश के अलग-अलग हिस्सों में जिस तरह का उन्माद और हिंसा देखने को मिले यह किसी भी सभ्य सज्जन इन्सान के लिए चाहे वह धार्मिक हो या न हो मान्य नहीं है। हाथ में भगवा झण्डा लिये संघ परिवार के लम्पट सड़कों पर आतंक मचा रहे थे। कहीं मस्जिदों पर चढ़कर भगवा झण्डा फहराया, कहीं मस्जिद को आग लगा दी, दुकानें जलायीं, मार-पीट की। इन सभी घटनाओं में पुलिस मौजूद थी लेकिन मूक दर्शक बनकर। पुलिस ने एक बार भी दंगाइयों को रोकने का प्रयास तक नहीं किया। कह सकते हैं सारी घटनाओं को पुलिस संरक्षण में अंजाम दिया गया। जेएनयू भी एक बार फिर सुर्ख़ियों में घसीटा गया। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के गुण्डों ने विश्वविद्यालय परिसर में एक सोची समझी साज़िश के तहत शाकाहारी-माँसाहारी भोजन का विवाद पैदा किया जिसमें बाहर से आये कई गुण्डे भी शामिल थे। इन्होंने मिलकर आम छात्रों के साथ मार-पीट की। यहाँ भी पुलिस मूक दर्शक बनी खड़ी रही। किसी ग़ैर-मुद्दे को मुद्दा कैसे बनाया जाता है इसकी महारत संघ परिवार को हासिल है। देश में ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, महँगाई जैसे मुद्दे तो जैसे समाप्त हो गये हैं! वास्तव में, देश में आज भयंकर बेरोज़गारी, ग़रीबी और महँगाई है, ठीक इसीलिए संघ परिवार धार्मिक उन्माद फैलाकर साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण कर रहा है, ताकि जनता का असली मुद्दों से ध्यान भटकाया जा सके। देश मानो इन वास्तविक समस्याओं पर विजय प्राप्त कर चुका है इसलिए अब हमारे लिए सबसे प्रमुख मुद्दा रह गया है यह पता करना कि किसी विश्वविद्यालय के छात्र क्या खाते हैं? वैसे जेएनयू के सभी छात्रावासों में पहले से तय मेनू के अनुसार खाना बनता है जिसमें तीन दिन शाकाहारी और माँसाहारी दोनों प्रकार का भोजन होता है। अन्य विश्वविद्यालयों में भी सप्ताह में कुछ दिन मांसाहारी भोजन बनता है। छात्र अपनी इच्छा से भोजन का चयन करते हैं। दूसरी बात परिसर में हर तरह के पर्व त्योहार मनाये जाते हैं। लेकिन किसी भी छात्रावास के अन्दर कोई धार्मिक अनुष्ठान करने की इजाज़त नहीं होती है। परिषद के छात्रों ने अनुष्ठान किया और इन्तज़ार करते रहे कि कोई आपत्ति करे। लेकिन किसी के कुछ न कहने पर उन्होंने हॉस्टल में माँसाहारी भोजन बनने को मुद्दा बना दिया। मुद्दा कुछ भी नहीं था लेकिन एक योजना के तहत इसे मुद्दा बनाना गया। नयी शिक्षा नीति को लागू करने के लिए लगातार जेएनयू जैसे सार्वजनिक विश्वविद्यालयों को बदनाम करना संघ के लिए आवश्यक है। आने वाले दिनों में जब जेएनयू के छात्र फ़ीस वृद्धि को लेकर या शिक्षा के निजीकरण को लेकर आन्दोलन करेंगे तो आम जनता उनका समर्थन नहीं करे इसलिए इसे बार-बार बदनाम किया जाता है। जेएनयू एकमात्र ऐसा विश्वविद्यालय है जिसमें मात्र 120 रुपये में आज भी छात्र एक सत्र की पढ़ाई करते हैं।

वैसे तो ऐसे किसी मुद्दे पर मीडिया में लगातार ख़बर चलना और चर्चा करना देश की मज़दूर मेहनतकश आबादी के साथ भद्दा मज़ाक़ है जो हर रोज़ भुखमरी, बेरोज़गारी और महँगाई की मार झेल रही है। लेकिन संघ और भाजपा सरकार इन दिनों इसके अलावा और कुछ कर भी नहीं रहे हैं। और उन्हें ऐसा ही करना है क्योंकि भाजपा सरकार मेहनतकश जनता के हितों के अनुसार देश नहीं चला रही है और चला भी नहीं सकती है, बल्कि अडानी, अम्बानी और टाटा-बिड़ला जैसे कॉरपोरेट घरानों की मैनेजिंग कमेटी का ही काम कर रही है और वह भी सबसे ज़्यादा कुशलता और तानाशाहाना तरीक़े से। जनता का वोट लेकर संसद में पहुँचने पर और फिर वहाँ नंगे तौर पर पूँजी की चाकरी करने की स्थिति में जनता के ग़ुस्से को क़ाबू में करने के लिए धर्म-जाति के नाम पर बवाल खड़ा करना इनकी सख़्त ज़रूरत है। यदि लोग धर्म और जाति के नाम पर बटेंगे नहीं तो इनसे सवाल पूछेंगे। पूछेंगे कि काला धन जो देश में आने वाला था वह कहाँ गया, 2 करोड़ नौकरियाँ हर वर्ष देने का वायदा था वह कहाँ गया, देश को महँगाई-मुक्त बनाने का वायदा कहाँ गया।। "बहुत हुई महाँगाई की मार अबकी बार मोदी सरकार!", ऐसे वायदे तो आप सभी भूल ही गये होंगे। लेकिन वहीं वाट्सअप यूनिवर्सिटी से आने वाला ज्ञान सुबह से शाम तक बताता है कि हिन्दू ख़तरे में हैं। हम भी आँख-दिमाग़ बन्द कर यह मान लेते हैं। लव जिहाद, अर्बन नक्सल, राष्ट्रद्रोही न जाने कैसे-कैसे झूठे बेहूदा वीडियो और तस्वीरों पर हम विश्वास करते हैं और इन्हें सच मानते हुए ग़ुस्से और नफ़रत से उबलने लगते हैं। हिन्दुओं की ही तरह अन्य धर्मों को मानने वाली मेहनतकश आबादी भी हर रोज़ दो जून की रोटी के लिए जद्दोजहद करती है। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, दलित हो या स्वर्ण, देश की ग़रीब मेहनतकश आबादी 12-12 घण्टे हाड़-तोड़ मेहनत करती है और इसके बाद भी परिवार की ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाती। कई तो एक साथ दो-दो नौकरियाँ कर रहे होते हैं लेकिन तब भी बच्चों की दवाई, माँ-बाप का इलाज कुछ नहीं जुड़ पाता। इन परेशानियों के समाधान की कोई बात नहीं मिलती लेकिन ऐसे उन्मादियों के वीडियो ज़रूर रोज़ मिलते हैं जिनमें नारे लग रहे होते हैं 'भूखे हम सो जायेंगे लेकिन हिन्दू धर्म को बचायेंगे'। हमें भी लगने लगता है कि हम ऐसे एहसानफ़रामोश नहीं बनना चाहते जो कि धर्म से ज़्यादा पेट की सोचे! इसी बेवक़ूफ़ी में तमाम लोग फँसे हुए हैं। हम मज़दूरों को ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों में नहीं फँसना चाहिए और इस बात को समझना चाहिए कि आज देश और दुनिया में दो ही जमातें हैं: अमीर और ग़रीब। अगर धर्म को बचाने की इतनी ही परवाह है भाजपा और संघ परिवार के दंगाइयों को तो वे सो जायें ख़ाली पेट! वैसे भी वे कुछ बनाते या पैदा करते तो हैं नहीं, तो उन्हें कुछ मिलना भी नहीं चाहिए। लेकिन हम मज़दूर-मेहनतकश भूखे पेट क्यों सोयें धर्म के उन्माद में? हम क्यों अपने ही भाइयों का ख़ून बहायें इन संघी दंगाइयों के फ़रेब में फँसकर?

क्या यह सोचने की बात नहीं है कि भूखे रहने की भी ज़िम्मेदारी हमारी और धर्म रक्षा की भी ज़िम्मेदारी हमारी! आलीशान मकानों में रहने वाले पूँजीपति, कारख़ानों में आपका शोषण करने वाले मालिक, उनके बच्चे तो सड़कों पर भगवा झण्डा लिये धर्म की रक्षा में नहीं निकलते? अमित शाह के बेटे का व्यापार दिन दुनी रात चौगुनी तरक़्क़ी कर रहा है। साथ ही वह आईसीसी का अध्यक्ष भी है। किसी भी नेता या मंत्री के बारे में पता करें वे स्वयं और उनके बच्चे ऊँचे-ऊँचे मकानों में रहते हैं। विदेशों की यात्राएँ करते हैं और अय्याशी-भरा जीवन जीते हैं। अपने को प्रधान सेवक कहने वाले नरेन्द्र मोदी जी करोड़ों की गाड़ियों में घूमते हैं। उनका अपना निजी जेट है और अब रहने के लिए 13,450 करोड़ का सेण्ट्रल विस्टा बनने जा रहा है। इन सबको भी देखते हुए अगर हम मूर्ख बनते रहेंगे तो अपने ही भाइयों के ख़ून से अपने हाथ रंगते रहेंगे। हमारी एकता टूटती रहेगी और फूट डालो राज करो की नीति को लागू करते हुए पूँजीपति वर्ग और उनके नेता मंत्री हमारा शोषण करते रहेंगे, महँगाई से हमें बेहाल करते रहेंगे और दंगों में हमारे घर जलवाते रहेंगे।

इनकी एक दूरगामी योजना देश की पूरी शिक्षा के पाठ्यक्रम से जुड़ती है। नवउदारीकरण के दौर में जिस तरह राज्य की सभी ज़िम्मेदारियों को निजी हाथों में खुले तौर पर सौंपा जा रहा है उनमें सबसे प्रमुख है शिक्षा का बाज़ारीकरण। नयी शिक्षा नीति के तहत सभी उच्च शिक्षा के संस्थानों को निजी हाथों में सौंपने की योजना है। बाज़ार में शिक्षा फिर हर किसी की जेब के अनुसार मिलेगी। अच्छी शिक्षा के लिए मोटी रक़म और कम पैसों में भगवा शिक्षा ही मिलेगी। मतलब जितने भी सरकारी स्कूल होंगे उनमें दीनानाथ बत्रा की पाठ्य पुस्तकें पढ़ाई जायेंगी और अच्छे महँगे स्कूलों में बढ़िया पढ़ाई ताकि ग़रीबों के बच्चे संघ के दंगाई बने और अमीरों के बच्चे इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, नेता, व्यापारी, अधिकारी। हालाँकि महँगे स्कूलों और विश्वविद्यालयों में भी भगवा शिक्षा का परिष्कृत रूप मौजूद होगा ताकि इन संस्थानों में भी संघ और भाजपा के प्रति वफ़ादारी बनी रहे।

हाल ही में इतिहास और विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों में बढ़ते भगवाकरण यानी मनगढ़न्त इतिहास और अवैज्ञानिक दावों पर सवाल उठाने पर देश के उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने बयान दिया कि देश की शिक्षा के भगवाकरण में हर्ज़ ही क्या है? कहा कि 'भगवाकरण' का अर्थ 'भारतीयकरण' है और यह मैकॉले की शिक्षा नीति का विरोध है।

पहली बात 'भगवाकरण' और 'भारतीयकरण' एक दूसरे के पूरक नहीं हैं। भगवाकरण का अर्थ है हिन्दुत्व की साम्प्रदायिक विचारधारा को अपनाना, जिसका मक़सद हिन्दुओं का भला करना नहीं है। नाम से धोखा न खाइए। ग़रीब हिन्दुओं की भी यह विचारधारा उतनी ही दुश्मन है। इसका मक़सद है ग़रीबों को बाँटकर रखना ताकि पूँजीपतियों के हितों की सेवा की जा सके। देश का फ़ासीवादी संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ इस फ़ासीवादी विचारधारा को 1925 से देश में लागू करने का प्रयास कर रहा है। इस पूरी विचारधारा पर यहाँ लिखा नहीं जा सकता बस संक्षेप में यह कह सकते हैं कि यह मज़दूर-विरोधी, मुसलमान-विरोधी, स्त्री-विरोधी, दलित-विरोधी, अल्पसंख्यक-विरोधी, दमित राष्ट्र व राष्ट्रीयता विरोधी विचारधारा है। यह एक ऐसे हिन्दू राष्ट्र के निमार्ण की बात करती है जहाँ मज़दूर (हिन्दू मज़दूरों समेत), मुसलमान, स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक सब अनुशासन में रहेंगे। आज इनके अनुशासन में नहीं होने की वजह से देश की सारी परेशानियाँ हैं! इतिहास में एक ऐसे राष्ट्र की छवि प्रस्तुत की जाती है जब सभी समाज में अपनी-अपनी जगह काम करते थे और बिना सवाल किये ख़ुश रहते थे! यह 'ख़ुशहाल हिन्दू राष्ट्र' नष्ट हो गया क्योंकि मज़दूरों, मुसलमानों, स्त्रियों, दलितों, अल्पसंख्यकों आदि को अधिकार मिलने लगे और उन्होंने पूरे समाज का तालमेल बिगाड़ दिया। इसलिए हिन्दुत्व की विचारधारा इस तालमेल को फिर से बहाल करना चाहती है! यह इन सबों को इनकी असली जगह पर लाना चाहती है। इन्हें ही काल्पनिक शत्रु की तरह पेश किया जाता है जिन्होंने हिन्दू राष्ट्र को नष्ट कर दिया था! सबसे बड़े दुश्मन के तौर पर मुसलमानों को प्रस्तुत किया जाता है। इस सोच के इर्द-गिर्द तमाम झूठे इतिहास, पूर्वाग्रहों और सफ़ेद झूठ की धुँध फैलायी जाती है। सूचना तंत्र पर आज इनका पूर्ण नियंत्रण है उसके माध्यम से यह काम बेहद आसान हो गया है। मोबाइल फ़ोन, टीवी चैनलों, अख़बार, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, सरकारी संस्थानों, कारख़ानों, ग़रीब बस्तियों, और दफ़्तरों में ऐसे सफ़ेद झूठ और तथ्यविहीन इतिहास फैलाये जा रहे हैं। इसे ही उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू 'भारतीयकरण' का नाम दे रहे हैं। तर्क, इतिहास और विज्ञानविहीन कट्टरपन्थी विचारधारा किसी भी रूप में भारतीय नहीं है। यह विचारधारा जिसकी स्वयं की पैदाइश जर्मनी और इटली के फ़ासीवाद से हुई है वह भारतीयकरण का दावा कर रहे हैं! जर्मनी और इटली की तरह ही बड़ी इजारेदार पूँजी की सेवा करने वाली यह विचारधारा मज़दूर, अल्पसंख्यक, स्त्री विरोधी है। इसका भारतीय इतिहास और भारतीय संस्कृति से कोई लेना-देना नहीं है। इतिहास में इनकी जगह ग़द्दारों की है। पहले आज़ादी के संघर्ष से ग़द्दारी की, क्रान्तिकारियों की मुख़बिरी की और आज पूँजी की चाकरी करने के लिए आम-मज़दूर मेहनतकश आबादी के साथ दुश्मनी निभा रहे हैं। अपनी साम्प्रदायिक राजनीति के तहत दंगों की हिंसा में ग़रीब-मेहनतकश मज़दूर आबादी की आहूति देते हैं।

रही बात मैकॉले की शिक्षा नीति की तो आज़ादी के बाद देश के बुर्जुआ शासकों ने निश्चित ही अंग्रेज़ियत को बनाये रखा। देश के तमाम शिक्षा के उच्च संस्थानों में अंग्रेज़ी का बोल-बाला बना रहा। यह भी सच है कि इसके कारण भारतीय जनमानस में अंग्रेज़ियत की और औपनिवेशिक मानसिकता का प्रभाव आज तक मौजूद है। लेकिन संघ परिवार के ग़द्दार ख़ुद ही मैकॉले और उपनिवेशवादियों की गोद में बैठे थे, वे किस मुँह से इसका विरोध करेंगे? अंग्रेज़ों की चाटुकारिता करने वाला संघ आज मैकॉले को क़ब्र से खोदकर

(पेज 14 पर जारी)

मज़दूर और मेहनतकश दोस्तो! सावधान!

(पेज 1 से आगे)

समूची भगवा फ़ासीवादी सत्ता इन दंगाइयों और गुण्डों के साथ खड़ी है। और खड़ी हो भी क्यों नहीं? यह सब इन्हीं फ़ासीवादियों की तयशुदा योजना के तहत ही तो हो रहा है!

क्या आपने सोचा है कि एक तरफ़ जनता पर करों का बोझ लादकर उसकी जेबों पर डाके डालने का काम करते हुए मोदी सरकार और संघ परिवार अचानक ठीक उन्हीं राज्यों में दंगे क्यों भड़का रहे हैं जिनमें चुनाव हैं? क्या आपने सोचा है कि हर ऐसे दंगे में हम मज़दूरों और मेहनतकशों के साथ क्या होता है, चाहे हम हिन्दू हों, मुसलमान हों, किसी अन्य धर्म के हों, दलित हों या स्वर्ण हों, किसी भी जाति के हों? जी हाँ! हमारे ही घर जलते हैं, हमारे ही लोग मरते हैं। हमारे भीतर हमारे ही भाइयों-बहनों के बारे में डर और नफ़रत भरने का काम किया जाता है। मसलन, हिन्दू मज़दूरों को बताया जाता है कि देश की सभी समस्याओं के ज़िम्मेदार तो मुसलमान हैं; वहीं मुसलमान कट्टरपन्थी ताक़तें इसके जवाब में इस्लामी धार्मिक कट्टरपन्थ की सिगड़ी गर्म करती हैं। नतीजा होता है साम्प्रदायिक तनाव और दंगे जिसमें हमेशा आम मेहनतकश लोग अपनी जान-माल से क़ीमत चुकाते हैं। क्या आपको पता है कि भाजपा या ए.आई.एम.आई.एम. का कोई नेता दंगों में मरा हो या उनका घर जला हो? जी नहीं! जब आप इनके द्वारा फैलाये गये धार्मिक उन्माद में बहकर एक-दूसरे के साथ सिर-फुटौव्वल कर रहे होते हैं, तो सारे ही प्रकार के धार्मिक कट्टरपन्थी आपस में भोज कर रहे होते हैं, जाम छलका रहे होते हैं और आप पर हँस रहे होते हैं।

यह सारा धार्मिक उन्माद इसलिए फैलाया जाता है कि हम मज़दूर-मेहनतकश देख ही न पायें कि हमें सरकार और पूँजीपति वर्ग किस प्रकार लूट रहा है, किस प्रकार करों का बोझ बढ़ाकर हमारी जेबों को ख़ाली किया जा रहा है, किस प्रकार हमारी वास्तविक मज़दूरी घटायी जा रही है, किस प्रकार बचे-खुचे श्रम क़ानूनों को ख़त्म करके मालिकों और धन्नासेठों को हमें बेरोक-टोक लूटने की खुली छूट दी जा रही है। हमें राम के नाम पर परलोक में सुख का सपना दिखाकर इहलोक में दरिद्रता और अभाव के गर्त में धकेल दिया जाता है। हमें बताया जा रहा है कि भूखे रहो, मगर "राष्ट्र" (पढ़िए: पूँजीपतियों!) की सेवा करो, "रामराज्य" में चुपचाप अपने "कर्तव्य" निभाओ! ज़रा सोचिए, इससे किसे फ़ायदा होता है और किसे नुक़सान?

हम भी कई बार अपने जीवन की कठोर और कड़वी सच्चाई को भूलकर मज़हबी जुनून में बह जाते हैं। इसकी एक वजह यह भी होती है कि हम अपने जीवन की हाड़तोड़ मेहनत, भूख, अभाव, अशिक्षा, असुरक्षा और अनिश्चितता से थके और हताश होते हैं, चिड़चिड़ाये हुए होते हैं। फ़ासीवादी संघ परिवार और तमाम धार्मिक कट्टरपन्थी ताक़तें हमारी इसी हालत का फ़ायदा उठाती हैं। **हिन्दू मज़दूरों को फ़ासीवादी संघ परिवार बताता है कि मुसलमान दुश्मन हैं और अतीत के किसी काल्पनिक "राष्ट्र-गौरव" की याद दिलाते हैं, किसी "रामराज्य" का हवाला देते हैं और इन नक़ली "स्वर्ण युग" की बात कर मुसलमानों को उसके ख़त्म होने के लिए ज़िम्मेदार ठहराते हैं और बताते हैं कि अगर मुसलमानों को "सबक़ सिखाया जाये", "उन्हें औक़ात में रखा जाये" तो उस काल्पनिक गौरवशाली अतीत की वापसी हो जायेगी! सब कुछ ठीक हो जायेगा! "रामराज्य" आ जायेगा! इस्लामिक कट्टरपन्थी अपने जीवन की बदहाली से थके मुसलमान मज़दूरों-मेहनतकशों को जवाब में धार्मिक जुनून में बहाने का प्रचार करता है और अपने आप में सिमट जाने के लिए प्रेरित करता है। अन्य धर्मों के धार्मिक कट्टरपन्थी भी यही करते हैं। एक कट्टरपन्थ के बिना दूसरा कट्टरपन्थ पनपना नामुमकिन है। ये सारे एक दूसरे की दुकान चलाने में एक दूसरे की मदद करते हैं।**

अपने जीवन की कठिनाइयों से थके-हारे होने के कारण हममें से कई मेहनतकश भाई-बहन भी इस झाँसे और झूठ में आकर अपने ही वर्ग के भाइयों-बहनों के ख़ून के प्यासे हो जाते हैं। लेकिन सच्चाई क्या है? ऐसा कोई गौरवशाली स्वर्णयुग, "रामराज्य", सतयुग साहित्य की प्राचीन किताबों के अतिरिक्त कभी कहीं था ही नहीं। सच्चाई तो यह है कि शोषणकारी वर्ग समाज के सभी युग अमीरों और धन्नासेठों के लिए, पूँजीपतियों और ज़मीन्दारों के लिए स्वर्ण युग ही होते हैं। लेकिन हमारे लिए शोषण पर आधारित वर्ग समाज का हर दौर एक अन्धकार युग ही रहा है। हमें हमेशा ही शोषण और उत्पीड़न का दंश झेलना पड़ा है। इसलिए नहीं कि हम कम हैं और हमारे दुश्मन, यानी पूँजीपति, धन्नासेठ, धनी व्यापारी और दुकानदार संख्या में हमसे ज़्यादा हैं। वे इसलिए हम पर शासन क़ायम रखने में कामयाब हैं, क्योंकि वे राजनीतिक तौर पर संगठित हैं और हम राजनीतिक तौर पर असंगठित, क्योंकि वे हमें धर्म-जाति के नाम पर गुमराह करने में कामयाब हो जाते हैं, क्योंकि वे हमें ख़ैरात देकर हमारा मुँह बन्द करने में कामयाब हो जाते हैं, क्योंकि वे हमें रोटी और रोज़गार की जगह मन्दिर-मस्जिद का झुनझुना पकड़वाने और आपस में ही सिर-फुटौव्वल करवाने में सफल हो जाते हैं। इन बातों पर ज़रा सोचिए मज़दूर और मेहनतकश दोस्तो, बहनो-भाइयो!

यही है फ़ासीवादी मोदी सरकार का फ़ार्मुला जिसका इस्तेमाल कर हम मज़दूरों-मेहनतकशों को संगठित होकर अपने असली दुश्मन को पहचानने और उसके ख़िलाफ़ जुझारू संघर्ष करने में अक्षम बनाया जा रहा है: जनता को करों का बोझ बढ़ाकर लूटो + पूँजीपतियों को हमारी मेहनत की लूट के ज़रिए मुनाफ़ा पीटने की पूरी छूट दो + हमारे श्रम अधिकारों को छीनो और हमें हमारे "कर्तव्यों" का हवाला दो + जो अपने अधिकारों की बात करे उसे "देशद्रोही" क़रार दो + मेहनतकश जनता को तोड़ देने और खण्ड-खण्ड में बाँट देने के लिए धार्मिक उन्माद फैलाओ, साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करो। अब यह चाल इतनी बार इस्तेमाल की जा चुकी है कि हमें इसे समझ लेना चाहिए और इसके फन्दे में अपनी गर्दन नहीं देनी चाहिए।

हमें समझ लेना चाहिए कि समाज में आज दो मुख्य जमातें हैं और प्रधान अन्तरविरोध उनके बीच है। अन्य सभी जमातें राजनीतिक तौर पर इन दोनों में से किसी एक पक्ष में खड़ी हैं। एक जमात है मुट्ठीभर पूँजीपतियों और धन्नासेठों की और दूसरी जमात है करोड़ों-करोड़ मज़दूरों-मेहनतकशों की जिनकी मेहनत की लूट के बूते मौजूदा मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था चल रही है।

हमें समझ लेना चाहिए कि हमारे दुश्मन दूसरे धर्म या दूसरी जातियों के लोग नहीं हैं। वे तो हमारे वर्गीय भाई और बहन हैं। वे तो हमारे साथी हैं। जब क़ीमतें बढ़ती हैं, तो हम सबको नुक़सान होता है। जब श्रम क़ानूनों को कचरा-पेटी के हवाले किया जाता है तो हम सबके अधिकार छिनते हैं। जब बेरोज़गारी, छँटनी-तालाबन्दी बढ़ती है, तो हम सबके पेट पर लात पड़ती है। हमारे हितों में अलग क्या है? यह कि हम अलग-अलग मज़हबों को मानते हैं? मज़हब या धर्म तो हमारा व्यक्तिगत मसला है। कोई कौन-से धर्म को मानता है, क्या खाता है, क्या पहनता है, या कोई भी धर्म नहीं मानता, यह उसका व्यक्तिगत मसला है। इससे समाज और राजनीति का क्या लेना-देना? क्या किसी दूसरे धर्म वाले ने आपका कुछ बिगाड़ा? नहीं! क्या उसके द्वारा अपनी पूजा-अर्चना की पद्धति पर अमल करने से आपका कोई नुक़सान हुआ? नहीं! इतनी सदियों से नहीं हुआ, तो अभी भी नहीं हो रहा है। आपके बीच झगड़ा तो फ़ासीवादी और फ़िरकापरस्त ताक़तें फैला रही हैं ताकि आप अपने असली दुश्मन यानी मालिकों, ठेकेदारों, धन्नासेठों के पूरे वर्ग को दुश्मन के तौर पर पहचान न पायें, उन्हें कठघरे में न खड़ा कर पायें।

हमें समझ लेना चाहिए कि सारे ही धर्मों और जातियों के मज़दूरों-मेहनतकशों में कोई दुश्मनी या अन्तरविरोध नहीं है, बल्कि हमारे असली दुश्मन समूचा पूँजीपति वर्ग और उसकी राजनीतिक पार्टियाँ और आज के दौर में ख़ास तौर पर उसकी नुमाइन्दगी कर रही फ़ासीवादी भाजपा और मोदी सरकार हैं। ये ही वे ताक़तें हैं जो अपनी कुर्सी, अपनी ऐय्याशियों, अपने ऐशो-आराम, अपने महलों-बंगलों को सुरक्षित रखने के लिए, हमारी मेहनत की लूट पर टिकी व्यवस्था को क़ायम रखने के लिए हमें धर्म के नाम पर एक-दूसरे के ख़ून का प्यासा बना रही हैं, भाई को भाई का ख़ून पीना सिखा रही हैं। हम भी अपने जीवन की श्रान्ति-क्लान्ति से पैदा हताशा में कई बार इस धार्मिक उन्माद और जुनून में बह जाते हैं। हमें इसे रोकना होगा वरना हमारी बर्बादी इसी तरह से जारी रहेगी।

साम्प्रदायिक उन्माद का निशाना अब केवल मुसलमान व अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक नहीं बन रहे हैं, बल्कि ग़रीब मेहनतकश हिन्दू भी बन रहे हैं। हत्या और आगजनी के लिए सड़क पर घूम रही हत्यारी फ़ासीवादी भीड़ अपने जुनून में धर्म और जाति नहीं देखती। उसके निशाने पर समूची मज़दूर-मेहनतकश आबादी और मज़दूर आन्दोलन होता है। इस प्रकार की तमाम घटनाएँ अब सामने आ चुकी हैं, जब बहुसंख्यक धार्मिक समुदाय के ग़रीब मेहनतकश इस साम्प्रदायिक उन्माद का निशाना बन चुके हैं। वास्तव में, पूँजीपति वर्ग इन फ़ासीवादी वाहिनियों का इस्तेमाल मज़दूरों को डराकर रखने, उनके आन्दोलनों को "राष्ट्रदोही" क़रार देकर कुचलने में भी करता है। ये फ़ासीवादी वाहिनियाँ वे आतंकवादी दस्ते हैं, जिनका असली निशाना मज़दूर-मेहनतकश आबादी है, जिनका लक्ष्य इस आबादी को पूँजीपतियों की उजरती ग़ुलामी में अनुशासित रखना है। उन्हें दिखाने के लिए एक नक़ली दुश्मन चाहिए होता है। आम तौर पर भारत में उनके लिए यह दुश्मन मुसलमान होता है, लेकिन अलग-अलग इलाक़ों में वे किसी न किसी अल्पसंख्यक समुदाय को छाँट लेते हैं, जो भाषा, क्षेत्र, प्रवासी-मूलनिवासी के आधार पर अल्पसंख्यक होता है। लेकिन इस ऊपरी नक़ली दुश्मन के पीछे फ़ासीवाद का असली दुश्मन है मज़दूर वर्ग क्योंकि फ़ासीवाद वास्तव में बड़ी पूँजी की नग्न और बर्बर तानाशाही को टुटपुँजिया आबादी का एक प्रतिक्रियावादी, कट्टरपन्थी, फ़िरकापरस्त आन्दोलन खड़ा करके और उसे बड़ी पूँजी की सेवा में सन्नद्ध करके लागू करने के लिए खड़ा किया गया एक प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ (पूँजीवादी) आन्दोलन है। मोदी सरकार ने सारे धार्मिक उन्माद, दंगों, सीएए-एनआरसी, मन्दिर-मस्जिद की नौटंकी के पीछे जो असली काम किया है, क्या वह वास्तव में पूँजीपतियों की खुली और नंगी सेवा नहीं है? क्या देश के सबसे बड़े पूँजीपति यूँ ही भाजपा को अरबों-अरब रुपये का चन्दा दे रहे हैं? ज़रा सोचिए मज़दूर व मेहनतकश दोस्तो! इस फ़ासीवादी राजनीति की असलियत को पहचानिए।

अब देखते हैं कि पेट्रोल-डीज़ल की क़ीमतें बढ़ाने के पीछे मोदी सरकार के क्या तर्क हैं और वह किस प्रकार हमें बेवक़ूफ़ बना रही है।

लाख दंगे फैलाये जायें लेकिन पेट्रोल-डीज़ल की बढ़ती क़ीमतों और नतीजतन अन्य सभी बुनियादी ज़रूरी चीज़ों की बढ़ती क़ीमतों से जनता बदहाल है और उसके भीतर ग़ुस्सा है। ऐसे में, उन राज्यों में भाजपा को चुनावों में उल्टी हवा का सामना करना पड़ सकता है जहाँ अभी चुनाव होने वाले हैं। इसलिए भाजपा सरकार लगातार पेट्रोल और डीज़ल की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी को सरकार की मजबूरी और रूस-यूक्रेन युद्ध के फलस्वरूप विश्व बाज़ार में पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी का नतीजा बता रही है। आइए सच्चाई को समझ लेते हैं।

मोदी सरकार का दावा है कि अप्रैल 2021 से अप्रैल 2022 के बीच अमेरिका में 41 प्रतिशत, इंग्लैण्ड में 29 प्रतिशत, जर्मनी में 25 प्रतिशत, फ़्रांस में 31 प्रतिशत और ऑस्ट्रेलिया में 6 प्रतिशत की दर से पेट्रोल की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी हुई है जबकि भारत में केवल 14 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। लेकिन ऐसा इसलिए हुआ है कि भारत इससे पहले ही पेट्रोल की क़ीमतों में पर्याप्त बढ़ोत्तरी कर चुका था और फ़रवरी 2020 में पेट्रोल की अन्तरराष्ट्रीय क़ीमतों में गिरावट के बावजूद भारत में पेट्रोल की क़ीमतों को बढ़ाया ही गया था, जबकि अन्य देशों में ऐसा नहीं हुआ था। इसलिए वास्तविक तुलना होगी जनवरी 2020 से आज यानी अप्रैल 2022 की क़ीमतों में। जब हम यह तुलना करते हैं तो हम क्या देखते हैं? भारत में इन दो वर्षों में पेट्रोल की क़ीमतों में 37 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जबकि इसी दौर में इंग्लैण्ड

(पेज 9 पर जारी)

जनता को बाँटने की साज़िश में मत फँसो! अपनी वर्ग एकजुटता बनाओ! अपने असली दुश्मन को पहचानो!

(पेज 8 से आगे)

में 27 प्रतिशत, जर्मनी में 29 प्रतिशत, ऑस्ट्रेलिया में 17 प्रतिशत वृद्धि हुई है। केवल अमेरिका में इस दौर में इससे ज़्यादा यानी 58 प्रतिशत वृद्धि हुई, जिसका कारण मध्य-पूर्व में अमेरिका की ढीली पड़ती पकड़ और आर्थिक नुक़सान में निहित हैं। लेकिन अन्य सभी देशों के मुक़ाबले भारत में पेट्रोल की क़ीमतों में वृद्धि कहीं ज़्यादा है।

साथ ही मोदी सरकार ने अलग-अलग देशों में क्रय क्षमता समानता सूचकांक (परचेज़िंग पावर पैरिटी इण्डेक्स) को ग़ायब करके पेट्रोल की क़ीमतों में तुलना की, जिसके ग़लत नतीजे भारत की जनता के सामने पेश किये गये। इस सूचकांक का अर्थ यह है कि यदि अमेरिका में कोई व्यक्ति एक डॉलर में कोई वस्तु ख़रीदता है, तो उसे अपने देश में उसके लिए कितना ख़र्च करना पड़ता है। अगर हम आज इस सूचकांक पर नज़र डालें तो जब कोई अमेरिका में 1 डॉलर में कोई वस्तु ख़रीदता है, तो उसे इंग्लैण्ड में उसके लिए 0.67 यूरो, जर्मनी में 0.73 यूरो, चीन में 4.18 सीएनवाई, ऑस्ट्रेलिया में 1.46 ऑस्ट्रेलियाई डॉलर और भारत में 23 रुपये ख़र्च करने पड़ते हैं। यह अन्तर अलग-अलग देशों के उत्पादक शक्तियों के विकास, व्यापार सन्तुलन, और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की स्थिति पर निर्भर करता है। अगर हम अलग-अलग देशों में एक ही माल की क़ीमत की तुलना करना चाहते हैं, तो हम केवल मुद्राओं की विनिमय दर के आधार पर नहीं कर सकते हैं। इसके लिए हमें क्रय क्षमता समानता सूचकांक को देखना होगा। यदि हम इस सूचकांक को ध्यान में रखकर तुलना करें तो पेट्रोल व डीज़ल की क़ीमतें इन देशों में इस प्रकार हैं:

अमेरिका – रु. 28 प्रति लीटर
इंग्लैण्ड – रु. 57 प्रति लीटर
जर्मनी – रु. 64 प्रति लीटर
फ़्रांस – रु. 56 प्रति लीटर
ऑस्ट्रेलिया – रु. 31 प्रति लीटर
चीन – रु. 52 प्रति लीटर
भारत – रु. 112 प्रति लीटर

यानी अधिकांश देशों से भारत में पेट्रोल की क़ीमतें आज तिगुनी या दोगुनी हैं। इसी प्रकार डीज़ल की क़ीमतों की तुलना देखें:

अमेरिका – रु. 31 प्रति लीटर
इंग्लैण्ड – रु. 62 प्रति लीटर
जर्मनी – रु. 66 प्रति लीटर
फ़्रांस – रु. 59 प्रति लीटर
ऑस्ट्रेलिया – रु. 34 प्रति लीटर
चीन – रु. 47 प्रति लीटर
भारत – रु. 100 प्रति लीटर

यहाँ भी हम देख सकते हैं कि भारत में डीज़ल की क़ीमतें उपरोक्त देशों से डेढ़ से दो गुनी ज़्यादा हैं।

ऐसा क्यों है? क्योंकि भारत सरकार द्वारा जो भारी कर पेट्रोलियम उत्पादों पर डाले गये हैं, वे दुनिया में सबसे ज़्यादा कर दरों में से एक है। पेट्रोल व डीज़ल की क़ीमतों में आधे से ज़्यादा टैक्स हैं जिनके बूते नेताओं-नौकरशाहों की ऐय्याशी, उनके भारी वेतन-भत्ते, उनके महल-बंगले क़ायम रखे जाते हैं और मोदी सरकार का सेण्ट्रल विस्टा बनता है। सरकार कहती है कि अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में पेट्रोल क़ीमतों में बढ़ोत्तरी के फलस्वरूप अगर देश के भीतर बढ़ोत्तरी नहीं की गयी तो फिर सरकार को रु. 19,000 करोड़ का नुक़सान होगा और फिर वह जनता के लिए कल्याणकारी काम कैसे करेगी!? वाह जी वाह! हर बजट में जनता के लिए लागू कल्याणकारी योजनाओं के ख़र्च में तो सरकार कटौती कर रही है, चाहे वे पेंशन हो, मनरेगा हो, या फिर रोज़गार सम्बन्धी व आवास सम्बन्धी योजनाएँ। साफ़ है कि करों में बढ़ोत्तरी जनता के कल्याण के लिए नहीं की जा रही है बल्कि पूँजीपतियों, नेताओं, नौकरशाहों की ऐय्याशी में बढ़ोत्तरी के लिए की जा रही है। ऐसे ही प्रधानमंत्री मोदी करोड़ों की कार और अरबों के हवाई जहाज़ में थोड़े ही चलते हैं! लेकिन हमें बताया जाता है कि सन्तोष करो और आधी रोटी खाकर "धर्म रक्षा" करो, ताकि इहलोक कैसा भी बीते, लेकिन परलोक सुधर जाये!

अगर सरकार जनता के कल्याण पर ही अधिक ख़र्च करना चाहती है, तो वह पेट्रोल और डीज़ल पर दोगुने-तिगुने टैक्स लगाकर जनता की ही जेब ख़ाली करने की बजाय इस देश के उन सबसे अमीर पूँजीपतियों पर समृद्धि कर और उत्तराधिकार कर क्यों नहीं लगाती? कम-से-कम सैद्धान्तिक तौर पर, ऐसे कर लगाने के लिए तो समाजवाद की भी आवश्यकता नहीं है! क्यों नहीं सरकार मज़दूरों-मेहनतकशों को लूटकर, उनका ख़ून निचोड़कर और उनकी हड्डियों का चूरा बनाकर अमीर बने अदानी-अम्बानी, टाटा-बिड़ला और लाखों अरब-खरबपतियों पर विशेष कर लगाकर कल्याणकारी योजनाओं के लिए धन जुटाती है? अगर जनता को लूटकर ही जनता का कल्याण करना है, तो यह तो एक हाथ से चवन्नी देना और दूसरे हाथ से अठन्नी ले लेना हुआ! जो ख़ैराती कल्याणवाद चल रहा है, वह इसी का नतीजा है। उत्तर प्रदेश में हमें 'डबल इंजन' की मोदी-योगी सरकार दो बार घटिया गुणवत्ता का राशन देती है (जिसे मोदी ख़ुद नहीं खायेंगे क्योंकि वह तो विदेशी मशरूम खाते हैं!) लेकिन बदले में उससे ज़्यादा क़ीमत बढ़ते करों के रूप में वसूल लेती है। लेकिन हमें लगता है कि बाबा जी ने हम पर उपकार कर दिया! लेकिन थोड़ा-सा सोचिए मेहनतकश-मज़दूर भाइयो और बहनो तो आप समझ जायेंगे कि बड़ी चालाकी से आपकी जेब पर डाका डाला जा रहा है और ख़ैराती राशन से उस डाके को छिपाया जा रहा है। वास्तव में यह 'डबल इंजन' सरकार डबल रेट से आपकी जेब ख़ाली कर रही है। अपने पिछले 2 साल के मासिक घरेलू ख़र्च को जोड़िए और देखिए कि उसमें कितनी बढ़ोत्तरी हुई है। आप समझ जायेंगे कि दो बार राशन की ख़ैरात ने आपको जितनी राहत दी है, उससे ज़्यादा राहत बढ़ते करों के बोझ ने आपसे लूट ली है।

यह है सच्चाई।

इसी दौर में मार्च 2022 में सीएमआईई के आँकड़ों के अनुसार बेरोज़गारी कोरोना की दूसरी लहर के समाप्त होने के बाद अपने चरम पर है। मार्च 2022 में रोज़गार में 14 लाख की कमी आयी और वह 39.6 करोड़ पर पहुँच गया। मार्च में ही लेबर फ़ोर्स में 38 लाख की कमी आयी और वह सिमटकर 42.8 करोड़ पर पहुँच गयी। आधिकारिक बेरोज़गारी दर में सरकार जो कमी दिखा रही है, उसका कारण लेबर फ़ोर्स में आयी यह कमी है। इस कमी का मूल कारण था शहरों में रोज़गार न मिल पाने के कारण एक अच्छी-ख़ासी आबादी का गाँवों की ओर पलायन जहाँ वे बेरोज़गार ही हैं, लेकिन खेती की प्रच्छन्न बेरोज़गारी में उनकी बेकारी छिप जा रही है। औद्योगिक नौकरियों में मार्च 2022 में 76 लाख की कमी आयी है। मैन्युफ़ैक्चरिंग सेक्टर में 41 लाख नौकरियाँ कम हुई हैं। निर्माण क्षेत्र में 29 लाख नौकरियाँ कम हुई हैं। खानों-खदानों में 11 लाख नौकरियाँ कम हुई हैं। फ़रवरी 2022 के ही मुक़ाबले मार्च 2022 में नौकरियों में 12.5 प्रतिशत की गिरावट आयी है, जबकि यदि मार्च 2021 से तुलना करें तो नौकरियों में 4.3 प्रतिशत की गिरावट आयी है।

सरकार द्वारा पूँजीपतियों के लिए ऋण सस्ते करने, श्रम क़ानूनों से छूट देने और हर प्रकार विनियमन से आज़ादी देने के बावजूद पूँजीपति वर्ग निवेश की दर को नहीं बढ़ा रहा है। वजह है मुनाफ़े की औसत दर के गिरने का संकट। यह संकट विश्व अर्थव्यवस्था के समान भारतीय अर्थव्यवस्था में भी गम्भीर रूप में मौजूद है। यह पूँजीवाद की आन्तरिक गति के कारण नियमित अन्तरालों पर पैदा होता ही रहता है।

कारण यह है कि आपसी प्रतिस्पर्द्धा में और मज़दूर वर्ग से नये मूल्य में मुनाफ़े के हिस्से को मज़दूरी के हिस्से की तुलना में बढ़ाने की जद्दोजहद में पूँजीपति वर्ग उत्पादन में उत्पादन के साधनों व तकनोलॉजी पर निवेश बढ़ाते जाने और श्रमशक्ति पर निवेश घटाते जाने के लिए बाध्य होता है। वह चाहकर भी इसे रोक नहीं सकता। लेकिन नया मूल्य और मुनाफ़ा दोनों ही नये जीवित श्रम के ख़र्च होने से पैदा होता है। मशीनें और कच्चा माल अपने आप में नया मूल्य नहीं पैदा कर सकते, वे केवल अपने मूल्य को नये उत्पादित माल में स्थानान्तरित कर सकते हैं। इसलिए जैसे-जैसे समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के स्तर पर मशीनों, इमारतों, कच्चे माल व अन्य उत्पादन के साधनों पर निवेश श्रमशक्ति पर निवेश के सापेक्ष बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे दीर्घकालिक तौर पर मुनाफ़े की औसत दर में गिरने की प्रवृत्ति सशक्त होती जाती है।

मज़दूरों के श्रम के शोषण की दर बढ़ने के कारण मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट को कुछ समय के लिए रोका ही जा सकता है, उसे ख़ारिज नहीं किया जा सकता, क्योंकि मज़दूर द्वारा अतिरिक्त श्रम देने की एक सीमा है: पूरा श्रमकाल और आवश्यक श्रमकाल को घटाने की भौतिक सीमा। यदि मज़दूर हवा-पानी पर जिये और 24 घण्टे भी काम करे, तो एक सीमा के बाद उसके शोषण की दर को बढ़ा पाना असम्भव है। इसलिए बेशी मूल्य, यानी मज़दूर द्वारा पूँजीपति को फ़्री में दिये जाने वाले श्रमकाल को बढ़ाने की एक सीमा होती है और मज़दूर के आवश्यक श्रमकाल (यानी जिस समय वह अपने लिए ज़रूरी वस्तुओं की क़ीमत के बराबर मूल्य पैदा करता है, यानी अपने लिए काम करता है) को घटाने की भी एक सीमा होती है। इन दोनों सीमाओं के पहुँचने के बाद भी पूँजीपति वर्ग आपसी प्रतिस्पर्द्धा के कारण मशीनों व कच्चे माल पर निवेश को बढ़ाता है, ताकि उत्पादकता को बढ़ाकर अपने माल की क़ीमत को कम किया जा सके और अपने प्रतिस्पर्द्धी पूँजीपति को बाज़ार की प्रतिस्पर्द्धा में हराया जा सके। इस होड़ में सभी पूँजीपतियों के लिए यह करना अनिवार्य होता है और मुनाफ़े की औसत दर के गिरने की दीर्घकालिक प्रवृत्ति को स्थायी तौर पर रोक पाना भी पूँजीवाद में असम्भव होता है। मुनाफ़े की औसत दर के गिरने का यही संकट अपने लक्षण के तौर पर अल्पउपभोग की परिघटना को भी जन्म देता है और सामान्य अतिउत्पादन की परिघटना को भी जन्म देता है। आज मुनाफ़े की औसत दर के गिरने का यह संकट ही पूँजीवाद को सता रहा है।

इसीलिए तमाम कल्याणवादियों द्वारा जनता की क्रय शक्ति को सामाजिक ख़र्च द्वारा बढ़ाने, आदि के नुस्ख़े काम नहीं आने वाले हैं। यह संकट अपनी क़ीमत वसूलेगा। तमाम छोटे और मँझोले पूँजीपतियों से भी जिन्हें बड़ी पूँजी निगलेगी और जिनके निगल लिये जाने पर टेसू बहाना मज़दूरों-मेहनतकशों का काम नहीं है क्योंकि वे भी उनके शोषण में कोई कसर नहीं छोड़ते; और मुख्य तौर पर मज़दूरों-मेहनतकशों को भी बढ़ती बेरोज़गारी और महँगाई के रूप में इसकी क़ीमत चुकानी पड़ेगी, जैसी कि आज चुकानी पड़ रही है।

इन्हीं स्थितियों में, फ़ासीवादी मोदी सरकार की यह रणनीति है कि मज़दूरों-मेहनतकशों को बाँटकर रखो, धार्मिक उन्माद फैलाकर उन्हें आपस में लड़ाओ, उन्हें राष्ट्रवाद की घुट्टी पिलाकर पूँजीपति वर्ग की चाकरी में लगाओ, किसी नक़ली गौरवशाली अतीत और "रामराज्य" का सपना दिखाओ और इन हथकण्डों से बेवक़ूफ़ बनाकर उन्हें मौजूदा फ़ासीवादी शासन और पूँजीवाद की मुख़ालफ़त कर पाने में अक्षम बनाओ ताकि पूँजीपतियों-मालिकों-ठेकेदारों और तमाम धन्नासेठों का शासन जारी रहे।

हम मज़दूरों को यह समझ लेना चाहिए कि हमने अगर इस रणनीति को और कामयाब होने दिया, तो यह हमारे लिए अपनी क़ब्र खोदने के समान होगा। हमें किसी भी क़ीमत पर अपना वर्ग भाईचारा क़ायम करना होगा, उसे टूटने नहीं देना होगा, किसी भी प्रकार के धार्मिक उन्माद में नहीं बहना होगा, सभी धर्मों और जातियों के मज़दूरों-मेहनतकशों की एकता क़ायम करनी होगी। हम सारे मज़दूरों-मेहनतकशों के हित एकसमान हैं और पूँजीपतियों-मालिकों-ठेकेदारों के हितों से बिल्कुल अलग हैं। धर्म को हमें स्पष्ट तौर पर व्यक्तिगत मसला मानना चाहिए और किसी भी व्यक्ति के किसी धर्म को मानने या किसी भी धर्म को न मानने, अपनी पसन्द का खाना खाने, अपनी पसन्द के कपड़े पहनने की स्वतंत्रता की हिफ़ाज़त करनी चाहिए। यह मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी सेक्युलरिज़्म और जनवाद है, जिस पर अमल किये बिना हम अपने उन्नत वर्ग संघर्ष के लिए गोलबन्द और संगठित नहीं हो सकते।

भारतीय राज्यसत्ता द्वारा उत्तर-पूर्व में आफ़्स्पा वाले क्षेत्रों को कम करने के मायने

अविनाश

गुरुवार, 31 मार्च को, जैसे ही केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने ट्विटर पर चमक-दमक और इवेण्ट बनाने की शैली में घोषणा की कि मोदी सरकार ने पूर्वोत्तर में आफ़्स्पा (AFSPA) के तहत क्षेत्रों को कम करने का फ़ैसला किया है वैसे ही मीडिया द्वारा जनता में इसे सनसनीख़ेज़ ख़बर की तरह पेश करते हुए कहा गया कि "आज आधी रात से, असम के पूरे 23 ज़िलों, और आंशिक रूप से असम के एक ज़िले व नागालैण्ड में छह और मणिपुर में छह ज़िलों से आफ़्स्पा को अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जायेगा" मगर यह भाजपा सरकार का कोई दयालु या हमदर्दी-भरा चेहरा नहीं है, बल्कि इन इलाक़ों से हाल में घटी घटनाओं के बाद लगातार आ रहे जनदबाव की वजह से लिया गया फ़ैसला है जो भाजपा के गले में अटकी हुई हड्डी बन गया था। मगर इस फ़ैसले से भी वहाँ की ज़मीनी स्थिति में कोई बुनियादी बदलाव नहीं आने वाला है।

आफ़्स्पा की उत्पत्ति औपनिवेशिक भारत में हुई थी जब अंग्रेज़ों ने 1942 में महात्मा गाँधी द्वारा शुरू किये गये भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि में इस अधिनियम को एक अध्यादेश के रूप में लाया गया था। आज़ादी के बाद, तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने असम और मणिपुर में क़ानून को जारी रखने का फ़ैसला किया और आज़ाद भारत की पूँजीवादी सरकार के असली चरित्र को उजागर किया। इसे बाद में 11 सितम्बर, 1958 को सशस्त्र बल (असम और मणिपुर) विशेष अधिकार अधिनियम, 1958 में बदल दिया गया। आफ़्स्पा नवम्बर 1990 में जम्मू कश्मीर में लगाया गया था और तब से राज्य सरकार द्वारा समीक्षा के बाद इसे हर छह महीने में बढ़ाया गया है। प्रारम्भ में, आफ़्स्पा अविभाजित असम की पहाड़ियों में लगाया गया था, जिन्हें "अशान्त क्षेत्रों" के रूप में पहचाना गया था। नागालैण्ड की पहाड़ियाँ भी उन क्षेत्रों में से थीं। बाद में, पूर्वोत्तर के सभी सात राज्यों को आफ़्स्पा के तहत लाया गया। आज़ादी के बाद से ही शुरुआती दशकों में तो भारत सरकार ने उत्तर-पूर्व को केवल रणनीतिक दृष्टि से ही देखा था। लेकिन आगे भारतीय राजसत्ता ने पूँजीवादी विकास के साथ ही प्राकृतिक सम्पदा और सस्ती श्रमशक्ति के दोहन के लिए भी इन क़ानूनों को जारी रखा।

इन इलाक़ों में कुख्यात सुरक्षा बल विशेषाधिकार क़ानून (ए.एफ़.एस.पी.ए.) लागू करके भारतीय राजसत्ता अपने नाख़ुन और दाँत आम आबादी के अधिकारों को दबाने के लिए पैने रखती है। इन अर्द्ध-सुरक्षा बलों का इस्तेमाल राष्ट्रीय मुक्ति के लिए चल रहे जनआन्दोलनों और जनविद्रोहों को भी बर्बरता से कुचलने में किया जाता है। भारतीय राज्यसत्ता की हिफ़ाज़त में तैनात सुरक्षा बलों के शीर्ष पर फ़ौज होती है जो न सिर्फ़ बाहरी आक्रमण का मुक़ाबला करने के लिए प्रशिक्षित होती है बल्कि देश के भीतर भी जन-बग़ावतों पर क़ाबू पाने के लिए भी विशेष रूप से प्रशिक्षण प्राप्त होती है। जम्मू-कश्मीर और उत्तर-पूर्व जैसे इलाक़ों में, जहाँ दमित राष्ट्र अपने आत्मनिर्णय के अधिकार को लेकर आन्दोलित हैं, फ़ौज का दमन इतना ज़्यादा है कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वहाँ सैनिक शासन जैसी स्थिति है।

आफ़्स्पा के तहत मानव अधिकारों का दमन व निरस्त करने के प्रयास

आफ़्स्पा क़ानून का इस्तेमाल कर सशस्त्र बलों द्वारा नक़ली मुठभेड़ों और अन्य मानवाधिकार उल्लंघन के कई आरोप हैं। सुप्रीम कोर्ट में दायर एक पीआईएल ने दावा किया कि 2000 और 2012 के बीच मणिपुर में कम से कम 1,528 ग़ैर-न्यायिक हत्याएँ हुई थीं। इरोम शर्मिला जैसे कार्यकर्ताओं ने आफ़्स्पा का विरोध किया है। उन्होंने क़ानून के ख़िलाफ़ 16 साल की भूख हड़ताल की। थंगजाम मनोरमा (1970-2004) मणिपुर, भारत की एक 32 वर्षीय महिला थी, जिसे भारतीय अर्धसैनिक इकाई, 17वीं असम राइफ़ल्स ने 11 जुलाई 2004 को मार दिया था। उसका गोलियों से लथपथ और बुरी तरह से क्षत-विक्षत शव लावारिस पाया गया था। उन्हें कई बार गोली मारी गयी थी। हत्या के पाँच दिन बाद, लगभग 30 अधेड़ उम्र की महिलाओं ने इम्फाल से होते हुए असम राइफ़ल्स मुख्यालय तक नग्न होकर प्रदर्शन किया था। इन्हीं घटनाओं के बाद पैदा हुए भारी जनदबाव में आफ़्स्पा पर केन्द्रीय स्तर पर 2004 में यूपीए सरकार द्वारा गठित जीवन रेड्डी समिति ने इसे निरस्त करने की सिफ़ारिश की थी। इसके बाद मामले की जाँच के लिए कैबिनेट सब-कमेटी का गठन किया गया। पाँच सदस्यीय इस समिति ने 6 जून 2005 को 147 पन्नों की रिपोर्ट सौंपी थी जिसमें आफ़्स्पा को 'दमन का प्रतीक' बताया गया था। मगर बाद में एनडीए सरकार ने रेड्डी समिति की सिफ़ारिशों को ख़ारिज कर दिया था और कैबिनेट उप-समिति को भंग कर दिया था।

पिछले साल से आफ़्स्पा के ख़िलाफ़ फिर आन्दोलन तेज़ हो गया था जब 4 दिसम्बर 2021 को सेना की इकाई के एक दल के 21 पैरा कमाण्डो ने छह नागरिकों को मार डाला। यह सभी निवासी एक कोयला खदान में काम करने के बाद एक पिक-अप वैन में घर लौट रहे थे। 4 दिसम्बर को ही, पहली घटना के थोड़ी देर के बाद इस इकाई द्वारा सात अन्य नागरिकों की मौत हुई। भारतीय सेना के पैरा कमाण्डो द्वारा नागालैण्ड के मोन ज़िले में नागरिकों को गोली मारने के बाद सशस्त्र बल विशेष अधिकार अधिनियम (आफ़्स्पा) फिर से विवादों में आ गया था और इस घटना के बाद आफ़्स्पा को हटाने को लेकर दबाव बढ़ता जा रहा था। इसके बाद जनता और राजनीतिक कार्यकर्ताओं द्वारा क़ानून को निरस्त करने की माँग काफ़ी तेज़ हो गयी थी।

एनएनपीजी (नगा नेशनल पॉलिटिकल ग्रुप्स) के संयोजक झिमोवी ने भी स्पष्ट रूप से 5 दिसम्बर को इसे हटाने का आह्वान किया कि "निर्दोष लोगों की हत्या का ऐसा कृत्य उच्चतम अर्थों में निन्दनीय है और इसकी सभी को निन्दा करनी चाहिए। सरकार को आफ़्स्पा को भी रद्द करना चाहिए और नागालैण्ड राज्य से अशान्त क्षेत्र अधिनियम को हटाना चाहिए।" 5 दिसन्बर को एक प्रेस बयान में, प्रभावशाली नागरिक समाज समूह, नागा मदर्स एसोसिएशन ने कहा, "हम माँग करते हैं कि राज्य सरकार आफ़्स्पा के तहत मानवाधिकारों के बार-बार उल्लंघन का संज्ञान ले और आफ़्स्पा को हटाने के लिए क़दम उठाये और इसके निरस्त करने की ज़ोरदार सिफ़ारिश करे, क्योंकि हम शान्ति की दहलीज़ पर खड़े हैं।" कई नागरिक समाज संगठनों के अलावा 5 दिसन्बर को इस तरह की माँग करने के अलावा, कई छात्र संगठनों ने भी राज्य से आफ़्स्पा हटाने की माँग की।

नागालैण्ड में, केन्द्र ने मोन हत्याओं के बाद गठित एक उच्च-स्तरीय समिति की सिफ़ारिश को स्वीकार कर लिया और 1 अप्रैल से चरणबद्ध तरीक़े से आफ़्स्पा को वापस लेने का निर्णय लिया। इसमें 4,138 वर्ग किमी का क्षेत्र शामिल है, जो पूरे इलाक़े का लगभग 25 प्रतिशत है। शामटोर, त्सेमिन्यु और त्युएनसांग ज़िलों को पूरी तरह से छूट दी गयी है जबकि कोहिमा, मोकोकचुंग, वोखा और लोंगलेंग को आंशिक रूप से आफ़्स्पा से छूट दी गयी है। मणिपुर में, इम्फाल घाटी के जिरीबाम, थौबल, बिष्णुपुर, काकचिंग, इम्फाल पूर्व और इम्फाल पश्चिम ज़िलों के 15 पुलिस स्टेशनों से अशान्त क्षेत्र का दर्जा आंशिक रूप से हटा दिया गया। यह औपचारिक क़दम उठाने के लिए भी भाजपा की केन्द्र सरकार को व्यापक जनदबाव और किसी जनविस्फोट की सम्भावना के कारण डरकर मजबूर होना पड़ा है। लेकिन यह क़दम औपचारिक से ज़्यादा कुछ साबित होगा, इसकी गुंजाइश कम ही दिखती है।

आफ़्स्पा क़ानूनों को हटाये जाने की ज़मीनी हक़ीक़त

32 वर्षों के बाद, विवादास्पद सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) अधिनियम, जो सुरक्षा बलों को व्यापक अधिकार देता है, को अरुणाचल प्रदेश के नौ में से तीन ज़िलों से आंशिक रूप से हटा दिया गया था। हालाँकि, इसे म्यांमार की सीमा से लगे क्षेत्रों में लागू रखा गया है। अरुणाचल प्रदेश, जिसका गठन 20 फ़रवरी, 1987 को हुआ था, को 1958 में संसद द्वारा अधिनियमित विवादास्पद आफ़्स्पा विरासत में मिला था और पूरे असम और केन्द्र शासित प्रदेश मणिपुर पर लागू हुआ था। अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिज़ोरम और नागालैण्ड के अस्तित्व में आने के बाद, अधिनियम को इन राज्यों में भी लागू करने के लिए उपयुक्त रूप से अनुकूलित किया गया था।

गृह मंत्रालय ने एक अधिसूचना में कहा कि अरुणाचल प्रदेश के चार पुलिस स्टेशन क्षेत्र, जिन्हें आफ़्स्पा के तहत "अशान्त क्षेत्र" घोषित किया गया था, अब रविवार से विशेष क़ानून के दायरे में नहीं हैं। मगर 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' ने 1 अप्रैल को अपने सम्पादकीय में सरकार की घोषणा की पोल खोलते हुए कहा कि, "...असम में आफ़्स्पा उतनी सख़्ती से कभी लागू ही नहीं था, जितना मणिपुर और नागालैण्ड में लागू था। इसलिए, अधिकांश असम से अधिनियम को हटाना बहुत आसान काम था। जबकि मणिपुर और नागालैण्ड में अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्रों को छूट दी जा रही है, इसका मतलब है कि इन दोनों राज्यों में से अधिकांश तौर पर कठोर क़ानून की छाया में बने हुए हैं।"

ऐसे में आइए सबसे पहले असम के उन नौ ज़िलों को देखें जिन्हें इस फ़ैसले से बाहर रखा गया था: तिनसुकिया, कार्बी आंगलोंग, गोलाघाट, डिब्रूगढ़, चराईदेव, शिवसागर, जोरहाट, पश्चिम कार्बी आंगलोंग और दीमा हसाओ। ये ज़िले पूर्वी या ऊपरी असम का निर्माण करते हैं, जिन्हें अक्सर 'असमिया गढ़' कहा जाता है। ये क्षेत्र कई जनजातियों का पारम्परिक घर भी हैं। ऊपरी असम को आफ़्स्पा के तहत रखने के पीछे प्राथमिक कारण भारत सरकार और असमिया सशस्त्र समूह, यूनाइटेड लिबरेशन फ्रण्ट ऑफ़ असम (उल्फ़ा) के वार्ता समर्थक गुट के बीच अधूरी शान्ति वार्ता है।

नागालैण्ड में, इसके वाणिज्यिक केन्द्र दीमापुर सहित 15 में से नौ ज़िले आफ़्स्पा के तहत बने रहेंगे। इसके अतिरिक्त, शेष ज़िलों के 15 पुलिस थानों के क्षेत्र भी आफ़्स्पा के अन्तर्गत होंगे। अनिवार्य रूप से, 31 मार्च के फ़ैसले के बाद भी, आफ़्स्पा नागालैण्ड के सभी ज़िलों में मौजूद रहेगा। ऐसे में इस प्रकार से ज़मीन पर शायद ही कोई बदलाव होगा।

ऐसे में किसी काल्पनिक एकाश्मी "भारत राष्ट्र" में इन क़ौमों का विलयन का प्रयास ज़ोर-ज़बर्दस्ती के बूते ही किया जा सकता है। इसलिए भारतीय राजसत्ता ने आफ़्स्पा जैसे काले क़ानूनों के द्वारा दमन जारी रखा है। आज भी इस पूरे भू-भाग में कई सशस्त्र संघर्ष चल रहे हैं। जब तक भारतीय राज्यसत्ता द्वारा तमाम दमित क़ौमों का राष्ट्रीय दमन जारी रहेगा, ये राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष भी विसर्जित नहीं होंगे। ये अगर जीतेंगे नहीं तो ये हारेंगे भी नहीं। नेतृत्व की कोई एक धारा जब समर्पण करेगी तो दूसरी धारा उभरकर सामने आयेगी और संघर्ष को जारी रखेगी। ऐतिहासिक तौर पर कहें तो राष्ट्रीय प्रश्न का अन्तिम और मुक़म्मल समाधान तो केवल और केवल एक समाजवादी राज्य के तहत ही सम्भव है, जो सही मायने में विभिन्न राष्ट्रों को अलग होने के अधिकार के समेत आत्मनिर्णय का अधिकार और अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं को सुसंगत जनवाद का अधिकार देता है। लेकिन हर दमित क़ौम के लिए पहला कार्यभार राष्ट्रीय मुक्ति का जनवादी कार्यभार ही होता है और उसके लिए क्रान्ति की मंज़िल भी राष्ट्रीय जनवादी ही होती है। समाजवादी क्रान्ति के लिए लड़ रही शक्तियों और सर्वहारा वर्ग को दमित क़ौमों के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों का बिना शर्त समर्थन करना चाहिए और साथ ही उसकी मज़दूर वर्ग के साथ एकता स्थापित करनी चाहिए। उन्हें उनके आत्मनिर्णय के अधिकार का पूर्ण रूप में समर्थन करना चाहिए। इन तमाम दमित क़ौमों में क्रान्ति की मंज़िल राष्ट्रीय जनवादी ही है और इन संघर्षों के साथ समाजवादी क्रान्ति के संघर्ष की धारा को जोड़ना आज हमारा एक अहम कार्यभार है।

जन्मदिवस (9 अप्रैल) के अवसर पर

"यदि जनबल पर विश्वास है तो हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जनता की दुर्दम शक्ति ने, फ़ासिज़्म की काली घटाओं में, आशा के विद्युत का संचार किया है। वही अमोघ शक्ति हमारे भविष्य की भी गारण्टी है।"

– राहुल सांकृत्यायन

भगतसिंह की विरासत को विकृत कर हड़पने की घटिया कोशिश में लगी 'आप'

भारत

पंजाब में आम आदमी पार्टी सरकार बनाने के बाद से भगतसिंह के अनुयायी होने का तमगा हासिल करने में लगी हुई है। इसके ज़रिए 'आप' ख़ुद को 'सच्चा राष्ट्रवादी' साबित करना चाहती है। चुनाव जीतने के बाद पंजाब के मुख्यमंत्री भगवन्त मान ने भगतसिंह के गाँव खटकड़ कलाँ में जाकर मुख्यमंत्री पद की शपथ ली और भगतसिंह के सपनों को पूरा करने के बड़े-बड़े दावे किये, जिनका असलियत से कोई लेना देना नहीं है। भगवन्त मान जो ख़ुद तो पीली पगड़ी में ही पाये जाते हैं, उन्होंने शपथ ग्रहण समारोह में आये लोगों से भी पीली पगड़ी पहनकर आने को कहा ताकि सबको लगे कि इससे भगतसिंह का सपना पूरा हो जायेगा! सच तो यह है कि भगतसिंह एक नास्तिक थे और उन्होंने कभी पीली पगड़ी पहनी ही नहीं। लेकिन आम आदमी पार्टी भगतसिंह की क्रान्तिकारी विरासत को विकृत कर सिख भावनाओं को भुनाने का प्रयास कर रही है। इसके अलावा उन्होंने 23 मार्च को राजकीय अवकाश घोषित किया है। दिल्ली सरकार भी इसी तर्ज़ पर भगतसिंह का इस्तेमाल कर रही है। 23 मार्च से पहले केजरीवाल ने घोषणा की कि दिल्ली के एक सैनिक स्कूल का नाम भगतसिंह के नाम पर रखा जायेगा। इसके अलावा दिल्ली सरकार के कार्यालयों में भगतसिंह की तस्वीर भी लगायी जायेगी।

सबसे पहले तो ये बता दें कि भगतसिंह का इस्तेमाल कर आम आदमी पार्टी जो 'सच्चा राष्ट्रवाद' परोस रही है और भाजपा जिस राष्ट्रवाद की बात करती है, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। असल में राष्ट्रवाद एक पूँजीवादी विचारधारा है और मेहनतकश वर्ग के शोषण चक्र को ही जारी रखने वाला विचारधारात्मक औज़ार है, जिसके माध्यम से पूँजीपति वर्ग अपना प्रभुत्व बरक़रार रखता है। मज़दूर वर्ग अन्तरराष्ट्रीयतावादी होता है। वह अपने देश से ज़रूर प्यार करता है और उसकी ग़ुलामी के ख़िलाफ़ लड़ता है, लेकिन वह किसी देश से नफ़रत नहीं करता क्योंकि सभी देशों को बनाने और चलाने वाले मज़दूर ही होते हैं। राष्ट्रवाद की सोच वास्तव में राष्ट्र के तौर पर पूँजीपति वर्ग के हितों को पेश करती है। पूँजीपतियों के राष्ट्र में मज़दूरों और ग़रीबों की यही जगह होती है कि वे उनके लिए 12-12 घण्टे कल-कारख़ानों और खेतों-खलिहानों में खटें और अगर वे इस शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हैं, तो उन्हें 'राष्ट्र-विरोधी' और 'राष्ट्रद्रोही' घोषित कर दिया जाता है। अगर हम मज़दूर अपनी ज़िन्दगी पर एक नज़र डालें तो पलभर में इस सच्चाई को समझ जाते हैं। भाजपा और आम आदमी पार्टी में राष्ट्रवादी बनने की होड़ मची रहती है, लेकिन ज़रा देखिए कि ये किनसे चन्दा पाती हैं और बदले में किनकी सेवा करती हैं। ये हमें-आपको लूटने वाले पूँजीपति और धन्नासेठ ही तो हैं! ये धन्नासेठ और खाये-अघाये उच्च मध्यवर्ग के लोग ही भाजपा और आम आदमी पार्टी का 'राष्ट्र' हैं और इनके राष्ट्रवाद और नक़ली गौरव के चक्कर में हम मज़दूरों-मेहनतकशों को नहीं पड़ना चाहिए। भगतसिंह का यही मानना था कि देश को बनाने और चलाने का काम देश के मज़दूर और ग़रीब किसान करते हैं और जब तक सारा राजकाज उनके हाथ में नहीं आता, जब तक सारे कल-कारख़ाने, खेत-खलिहान और खान-खदान उनकी सामूहिक सम्पत्ति नहीं बन जाते तब तक हमारे पास ख़ुश होने और गर्व करने का कोई कारण नहीं है।

आम आदमी पार्टी भगतसिंह के विचारों को दबाकर उनकी विरासत को कलंकित कर रही है। भगवन्त मान भगतसिंह की पीली पगड़ी का ख़ूब प्रचार कर रहे हैं। पर इसका असलियत से इसका कोई लेना-देना नहीं है। भगतसिंह की पीली पगड़ी में कोई तस्वीर नहीं है। उन्हें पीली पगड़ी पहनाने का काम लम्बे समय से भाजपा और तमाम सिख धार्मिक कट्टरपन्थी कर रहे हैं ताकि क्रान्तिकारी नास्तिक भगतसिंह के विचारों को ओझल कर, उन्हें सिख नायक, वीर योद्धा तक सीमित कर दिया जाये, जो कि सत्ता पक्ष के लिए फ़ायदेमन्द है। देखा जाये तो 1970 के दशक तक हर जगह भगतसिंह की हैट वाली तस्वीर ही प्रचलित थी। उसके बाद ही उन्हें पीली पगड़ी पहनाने का सिलसिला शुरू हुआ, जिसे आज 'आप' पंजाब में प्रचलित कर रही है। आम आदमी पार्टी भगतसिंह के नाम का इस्तेमाल कर रही है इसके पीछे का मुख्य मक़सद चुनावी मंसूबों को पूरा करना ही है। क्योंकि केजरीवाल भी जानता है कि भगतसिंह भारत में जन-जन के आदर्श हैं। इसी का फ़ायदा उठाकर भगतसिंह के विचारों को ग़ायब कर, उनके नाम का इस्तेमाल कर ज़हरीले राष्ट्रवाद का प्रचार कर रही है और चुनाव की राष्ट्रवादी रोटियाँ सेंक रही हैं।

वहीं सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आज जिस तरीक़े से भगतसिंह को पेश किया जा रहा है, वो हमेशा से इसके ख़िलाफ़ थे। इसलिए उन्होंने कहा था कि क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है और आज की सरकारें क्रान्ति से डरती हैं और भगतसिंह के विचारों से भी। आम आदमी पार्टी की बात की जाये तो इनका 'सच्चा राष्ट्रवाद' तो इनके सत्ता में आते ही दिख गया था। अपने शासन की शुरुआत ही मार्च 2015 में इसने मज़दूरों पर लाठीचार्ज करके की, जो बस इसे मज़दूरों से किये गये उसके वायदे याद दिला रहे थे। दिल्ली के अन्दर जो मज़दूरों की मेहनत की लूट मालिकों द्वारा की जा रही है, वो 'आप' के संश्रय में ही हो रहा है। याद कीजिए सीएए-एनआरसी के समय जब पूरी दिल्ली में आन्दोलन चल रहे थे, तब केजरीवाल ने कहा था कि एक घण्टे के लिए पुलिस दे दो, पूरा शाहीन बाग़ ख़ाली करा देंगे। जब दिल्ली दंगों में भी शहर जल रहा था तो ये महाशय और इनकी पार्टी मौन धारण करके बैठे थे। असल में यही इनकी देशभक्ति और राष्ट्रवाद है, जिसमें आम आदमी पार्टी भी भाजपा की बी टीम बनकर व्यापारियों-धन्नासेठों की सेवा में संलग्न हैं। यह अभी हाल में भी साबित हो गया जब आँगनवाड़ीकर्मियों की हड़ताल को आम आदमी पार्टी और भाजपा ने मिलकर हेस्मा लगाकर ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया। इस सब के बावजूद अगर किसी को लगता है कि 'आप' भगतसिंह का प्रचार कर रही है तो उसपर सिर्फ़ हँसी ही आ सकती है।

भगतसिंह ने कहा था कि अगर पूँजीपतियों-धन्नासेठों और ज़मीन्दारों की किसी भी पार्टी द्वारा अंग्रेज़ों से किसी समझौते के ज़रिए आज़ादी मिलती है तो बेशक गोरे अंग्रेज़ चले जायेंगे, पर उनकी जगह भूरे अंग्रेज़ राज करेंगे और असल आज़ादी तब तक नहीं आयेगी जब तक इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण ख़त्म नहीं हो जाता। आज के समय में जाति-धर्म के नाम पर बँटवारे किये जा रहे हैं, सरकार जनता के बुनियादी हक़ों को छीन रही है। अगर आज भगतसिंह जीवित होते तो इन सब अन्याय के ख़िलाफ़ बोलते और आज़ादी की अधूरी लड़ाई को पूरा करने में लग जाते। आज की सरकारें भी उन्हें देशद्रोही कहतीं क्योंकि उनके विचार आज भी शोषण करने वालों के ख़िलाफ़ हैं और इसलिए वे उनके विचारों से खौफ़ खाते हैं।

यही तो कारण है कि आज उनके विचारों को दबाकर उन्हें सिर्फ़ वीर योद्धा, सिख नायक के तौर पर स्थापित किया जा रहा है या फिर उनकी कुछ मूर्तियाँ-तस्वीरें लगायी जा रही हैं। सरकारें भी जानती हैं कि अगर आवाम भगतसिंह के विचारों को जान लेगी तो उनका स्वर्ग का सिंहासन ख़तरे में पड़ जायेगा, इसलिए उनके लिए भगतसिंह के विचारों को लगातार कुत्सा-प्रचार, झूठ-फ़रेब के माध्यम से छिपाया जा रहा है। ऐसे में भगतसिंह की विरासत को वही लोग आगे ले जा सकते हैं, जिन्हें लगता है अन्याय के ख़िलाफ़ विद्रोह न्यायसंगत है। जो तैयार हैं क्रान्ति का सन्देश देश की झुग्गी-बस्तियों, कल-कारख़ानों से लेकर खेतों-खलिहानों तक लेकर जाने के लिए। वही आज भगतसिंह के असली वारिस हो सकते हैं, न कि ये नौटंकीबाज़ 'आप' जो उनकी विरासत को विकृत कर रही है।

श्रीलंका और पाकिस्तान में नवउदारवादी पूँजीवादी आपदा का क़हर झेलती आम मेहनतकश आबादी

(पेज 16 से आगे)

ज़माने से ही इस सैन्य पूँजीपति वर्ग के अमेरिका से गहरे सम्बन्ध रहे हैं। ज़िया-उल-हक़ की इस्लामिक कट्टरपन्थी सैन्य तानाशाही के दौर में इस वर्ग की अमेरिकी साम्राज्यवादियों से क़रीबी परवान चढ़ी जब इसने अफ़ग़ान युद्ध के दौरान हथियारों और ड्रग्स के कारोबार में अकूत मुनाफ़ा कूटा। परवेज़ मुशर्रफ़ की सैन्य तानाशाही के दौर में इस सैन्य परजीवी वर्ग ने जॉर्ज बुश द्वारा घोषित तथाकथित आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध में शामिल होने की एवज में अमेरिकी साम्राज्यवादियों से जमकर पैसा वसूला। इस सैन्य पूँजीपति वर्ग के हाथों में ही पाकिस्तान की राज्यसत्ता की बागडोर रहती है, चाहे वहाँ प्रत्यक्ष सैन्य शासन हो या कोई नागरिक सरकार हो। जब भी कोई नागरिक सरकार सेना की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ जाने लगती है तो उसकी उल्टी गिनती शुरू हो जाती है। यही इमरान ख़ान के साथ हुआ। इमरान ख़ान नेशनल असेम्बली का विश्वास खोने से पहले ही पाकिस्तान की सेना का विश्वास खो चुके थे जिसकी वजह से उनकी सरकार का गिरना तय था।

पाकिस्तान में सतह पर जारी इस राजनीतिक उठापठक के पीछे वहाँ की अर्थव्यवस्था का गम्भीर संकट भी काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार है। ग़ौरतलब है कि पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था दशकों से आई.एम.एफ़ द्वारा दिये गये क़र्ज़ पर निर्भर है और कोई भी शासक पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था को इस चंगुल से बाहर नहीं निकाल पाया है। इमरान ख़ान ने अमेरिका और आई.एम.एफ़ के ख़िलाफ़ जुमलेबाज़ी तो बहुत की लेकिन सच तो यह है कि उनकी सरकार को भी आई.एम.एफ़ के सामने हाथ फैलाना पड़ा जब उन्होंने 2019 में आई.एम.एफ़ से 6 बिलियन डॉलर का क़र्ज़ लिया। यही नहीं इमरान की सरकार ने सऊदी अरब, यूएई और चीन के सामने भी हाथ फैलाये। इन सबके बावजूद अब एक बार फिर पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था कंगाली के कगार पर खड़ी है और उसे एक बार फिर से आई.एम.एफ़. के बेलआउट पैकेज की दरकार है। आई.एम.एफ़ ने फ़िलहाल पाकिस्तान में राजनीतिक स्थिरता आने तक बेलआउट पैकेज को मुल्तवी कर दिया है। ग़ौरतलब है कि 1958 से लेकर अब तक पाकिस्तान ने 22 बार आई.एम.एफ़ से क़र्ज़ लिया है और अब वहाँ की अर्थव्यवस्था की हालत इतनी ख़राब हो चुकी है कि उसे पुराने क़र्ज़ का सूद चुकाने के लिए भी नया क़र्ज़ लेना पड़ता है।

इमरान ख़ान ने सत्ता में आने के बाद नया पाकिस्तान बनाने के वायदे किये थे। लेकिन उनके चार साल के शासन के दौरान पाकिस्तान की सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर में साल-दर-साल भारी गिरावट हुई। पाकिस्तान का विदेशी मुद्रा भण्डार भी पिछले 4 सालों में तेज़ी से सिकुड़ा है, पाकिस्तानी रुपये का ज़बर्दस्त अवमूल्यन हुआ है और महँगाई भी अपने चरम पर है। खाद्य पदार्थों की क़ीमतें सबसे ज़्यादा बढ़ी हैं जिसका सीधा असर आम मेहनतकश अवाम की बदहाली के रूप में सामने आ रहा है। नये उद्योग-धन्धे लगाने के वायदे धरे के धरे रह गये और नया पाकिस्तान तो दूर इमरान ख़ान अपने देश के नागरिकों के लिए पुराने पाकिस्तान का भी सबसे ख़स्ताहाल संस्करण छोड़कर गये हैं। अपने फिसड्डी प्रदर्शन की इस कड़वी सच्चाई को छिपाने के लिए ही उन्होंने विदेशी साज़िश जैसे सस्ते जुमलों का इस्तेमाल करने की हास्यास्पद कोशिश की और उसमें भी अपनी जगहँसायी ही करायी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीलंका और पाकिस्तान दोनों ही देशों में नवउदारवादी पूँजीवाद भयानक तबाही का सबब बना है। हाल के दिनों में मिस्र, घाना, ज़ाम्बिया, इक्वाडोर, सूरीनाम, बेलीज़ की अर्थव्यवस्थाओं को भी कंगाल होने से बचने के लिए आई.एम.एफ़. की शरण में जाना पड़ा है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि आर्थिक संकट की ये सुनामी देर-सबेर भारत सहित उन तमाम देशों को अपने आगोश में लेगी जो नवउदारवादी नीतियों पर अमल कर रहे हैं। कई अर्थशास्त्री इस संकट से बचने के लिए नवउदारवाद के बरक्स कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य का कीन्सियाई नुस्ख़ा आज़माने का सुझाव दे रहे हैं। लेकिन वे भूल जाते हैं कि विश्व इतिहास में कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य का दौर एक ख़ास परिस्थिति की देन था जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूँजीवाद ने दो दशकों तक अभूतपूर्व तेज़ी का दौर देखा था जिसकी बदौलत बुर्जुआ राज्य के लिए कल्याणकारी कीन्सियाई नुस्ख़ों का ख़र्च उठाना मुमकिन हुआ था। आज विश्व पूँजीवाद जिस अवस्था में जा पहुँचा है उसमें उसके लिए यह मुमकिन ही नहीं है। इस सच्चाई की भी अनदेखी नहीं की जा सकती है कि कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य के दौर में भी पूँजीवाद मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से निजात नहीं पा सका था और उसके अन्तरविरोधों की परिणति ही नवउदारवाद के रूप में सामने आयी थी। नवउदारवादी पूँजीवाद के अन्तरविरोधों का समाधान आमूलगामी समाजवादी क्रान्ति और सर्वहारा राज्यसत्ता के ज़रिए ही मुमकिन है।

हड़तालों के बारे में

– लेनिन

मज़दूरों में हर जगह अपने हालात को लेकर भारी असन्तोष है और अनेक औद्योगिक इलाक़ों से मज़दूरों की छोटी-बड़ी हड़तालों की ख़बरें आती रहती हैं। लेकिन देश में एक सुसंगठित क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के न मौजूद होने के कारण अक्सर ये हड़तालें स्वतःस्फूर्त ढंग से, बिना किसी योजना व संगठित तैयारी के होती हैं, इसलिए ज़्यादातर मामलों में बिना कुछ हासिल किये ख़त्म हो जाती हैं। दूसरी ओर, पूँजीपति वर्ग आज मज़दूरों के हर आन्दोलन को कुचलने के लिए पूरी तरह चाक-चौबन्द है और सरकार, पुलिस-प्रशासन, कोर्ट-कचहरी, बुर्जुआ मीडिया सब उसके पक्ष में हैं। सबसे गन्दा काम किया है संशोधनवादी संसदमार्गी नक़ली कम्युनिस्ट पार्टियों से जुड़ी ट्रेड यूनियनों ने, जिन्होंने हड़ताल को एक-दो दिन के अनुष्ठान में बदलकर मज़दूर वर्ग की लड़ाई के इस ताक़तवर हथियार को बिल्कुल भोथरा कर दिया है। इसलिए ज़रूरी है कि मज़दूर अपने इस हथियार का सही ढंग से इस्तेमाल करने के बारे में सीखें। इसी उद्देश्य से हम मज़दूर वर्ग के महान क्रान्तिकारी नेता और शिक्षक लेनिन का यह लेख फिर से प्रकाशित कर रहे हैं। – सम्पादक

इधर कुछ वर्षों से रूस में मज़दूरों की हड़तालें बारम्बार हो रही हैं। एक भी ऐसी औद्योगिक गुबेर्निया नहीं है, जहाँ कई हड़तालें न हुई हों। और बड़े शहरों में तो हड़तालें कभी रुकती ही नहीं। इसलिए यह बोधगम्य बात है कि वर्ग-सचेत मज़दूर तथा समाजवादी हड़तालों के महत्व, उन्हें संचालित करने की विधियों तथा उनमें भाग लेने वाले समाजवादियों के कार्यभारों के प्रश्न में अधिकाधिक सतत रूप में दिलचस्पी लेते हैं।

हम यहाँ इन प्रश्नों के विषय में अपने विचारों की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। अपने पहले लेख में हमारी योजना आमतौर पर मज़दूर वर्ग आन्दोलन में हड़तालों के महत्व की चर्चा करने की है; दूसरे लेख में हम रूस में हड़ताल-विरोधी क़ानूनों की चर्चा करेंगे तथा तीसरे में इस बात की चर्चा करेंगे कि रूस में हड़तालें किस तरह की जाती थीं और की जाती हैं तथा उनके प्रति वर्ग-सचेत मज़दूरों को क्या रुख़ अपनाना चाहिए:-

1

सबसे पहले हमें हड़तालों के शुरू होने और फैलने का कारण ढूँढ़ना चाहिए। यदि कोई आदमी हड़तालों को याद करेगा, जिनकी उसे व्यक्तिगत अनुभव से, दूसरों से सुनी रिपोर्टों या अख़बारों की ख़बरों के माध्यम से जानकारी प्राप्त हुई हो, तो वह तुरन्त देख लेगा कि जहाँ कहीं बड़ी फ़ैक्टरियाँ हैं तथा उनकी संख्या बढ़ती जाती है, वहाँ हड़तालें होती तथा फैलती हैं। सैकड़ों (कभी-कभी हज़ारों तक) लोगों को काम पर रखने वाली बड़ी फ़ैक्टरियों में एक भी ऐसी फ़ैक्टरी ढूँढ़ना सम्भव नहीं होगा, जहाँ हड़तालें न हुई हों। जब रूस में केवल चन्द बड़ी फ़ैक्टरियाँ थीं, तो हड़तालें भी कम होती थीं। परन्तु जब से बड़े औद्योगिक ज़िलों और नये नगरों तथा गाँवों में बड़ी फ़ैक्टरियों की तादाद बड़ी तेज़ी से बढ़ती जा रही है, हड़तालें बारम्बार होने लगी हैं।

क्या कारण है कि बड़े पैमाने का फ़ैक्टरी उत्पादन हमेशा हड़तालों को जन्म देता है? इसका कारण यह है कि पूँजीवाद मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों के संघर्ष को लाज़िमी तौर पर जन्म देता है तथा जहाँ उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है, वहाँ संघर्ष अनिवार्य ढंग से हड़तालों का रूप ग्रहण करता है।

आइए, इस पर प्रकाश डालें।

पूँजीवाद नाम उस सामाजिक व्यवस्था को दिया गया है, जिसके अन्तर्गत ज़मीन, फ़ैक्टरियाँ, औज़ार आदि पर थोड़े-से भूस्वामियों तथा पूँजीपतियों का स्वामित्व होता है, जबकि जनसमुदाय के पास कोई सम्पत्ति नहीं होती या बहुत कम होती है तथा वह उजरती मज़दूर बनने के लिए बाध्य होता है। भूस्वामी तथा फ़ैक्टरी मालिक मज़दूरों को उजरत पर रखते हैं और उनसे इस या उस क़िस्म का माल तैयार कराते हैं, जिसे वे मण्डी में बेचते हैं। इसके अलावा फ़ैक्टरी मालिक मज़दूरों को केवल इतनी मज़दूरी देते हैं, जो उनके तथा उनके परिवारों के मात्र निर्वाह की व्यवस्था करती है, जबकि इस परिमाण से ऊपर मज़दूर जितना भी पैदा करता है, वह फ़ैक्टरी मालिक की जेब में उसके मुनाफ़े के रूप में चला जाता है। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत जन समुदाय दूसरों का उजरती मज़दूर होता है, वह अपने लिए काम नहीं करता, अपितु मज़दूरी पाने के वास्ते मालिकों के लिए काम करता है। यह बात समझ में आने वाली है कि मालिक हमेशा मज़दूरी घटाने का प्रयत्न करते हैं : मज़दूरों को वे जितना कम देंगे, उनका मुनाफ़ा उतना ही अधिक होगा। मज़दूर अधिक से अधिक मज़दूरी हासिल करने का प्रयत्न करते हैं, ताकि अपने परिवारों को पर्याप्त और पौष्टिक भोजन दे सकें, अच्छे घरों में रह सकें, दूसरे लोगों की तरह अच्छे कपड़े पहन सकें तथा भिखारियों की तरह न लगें। इस प्रकार मालिकों तथा मज़दूरों के बीच मज़दूरी की वजह से निरन्तर संघर्ष चल रहा है; मालिक जिस किसी मज़दूर को उपयुक्त समझता है, उसे उजरत पर हासिल करने के लिए स्वतंत्र है, इसलिए वह सबसे सस्ते मज़दूर की तलाश करता है। मज़दूर अपनी मर्ज़ी के मालिक को अपना श्रम उजरत पर देने के लिए स्वतंत्र है, इस तरह वह सबसे महँगे मालिक की तलाश करता है, जो उसे सबसे ज़्यादा देगा। मज़दूर चाहे देहात में काम करे या शहर में, वह अपना श्रम उजरत पर चाहे ज़मीन्दार को दे या धनी किसान को, ठेकेदार को अथवा फ़ैक्टरी मालिक को, वह हमेशा मालिक के साथ मोल-भाव करता है, मज़दूरी के लिए उससे संघर्ष करता है।

परन्तु क्या एक मज़दूर के लिए अकेले संघर्ष करना सम्भव है? मेहनतकश लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है : किसान तबाह हो रहे हैं तथा वे देहात से शहर या फ़ैक्टरी की ओर भाग रहे हैं। ज़मीन्दार तथा फ़ैक्टरी मालिक मशीनें लगा रहे हैं, जो मज़दूरों को उनके काम से वंचित करती रही हैं। शहरों में बेरोज़गारों की संख्या बढ़ रही है तथा गाँवों में अधिकाधिक लोग भिखारी बनते जा रहे हैं; जो भूखे हैं, वे मज़दूरी के स्तर को निरन्तर नीचे पहुँचा रहे हैं। मज़दूर के लिए अकेले मालिक से टक्कर लेना असम्भव हो जाता है। यदि मज़दूर अच्छी मज़दूरी माँगता है अथवा मज़दूरी में कटौती से असहमत होने का प्रयत्न करता है, तो मालिक उसे बाहर निकल जाने के लिए कहता है, क्योंकि दरवाज़े पर बहुत-से भूखे लोग खड़े होते हैं, जो कम मज़दूरी पर काम करने के लिए सहर्ष तैयार हो जायेंगे।

जब लोग इस हद तक तबाह हो जाते हैं कि शहरों और गाँवों में बेरोज़गारों की हमेशा बहुत बड़ी तादाद रहती है, जब फ़ैक्टरी मालिक अथाह मुनाफ़े खसोटते हैं तथा छोटे मालिकों को करोड़पति बाहर धकेल देते हैं, तब व्यक्तिगत रूप से मज़दूर पूँजीपति के सामने सर्वथा असहाय हो जाता है। तब पूँजीपति के लिए मज़दूर को पूरी तरह कुचलना, दास मज़दूर के रूप में उसे और निस्सन्देह अकेले उसे ही नहीं, वरन उसके साथ उसकी पत्नी तथा बच्चों को भी मौत की ओर धकेलना सम्भव हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम उन व्यवसायों को लें, जिनमें मज़दूर अभी तक क़ानून का संरक्षण हासिल नहीं कर सकते हैं तथा जिनमें वे पूँजीपतियों का प्रतिरोध नहीं कर सकते, तो हम वहाँ असाधारण रूप से लम्बा कार्य-दिवस देखेंगे, जो कभी-कभी 17 से लेकर 19 घण्टे तक का होता है, हम 5 या 6 वर्ष के बच्चों को कमरतोड़ काम करते हुए देखेंगे, हम स्थायी रूप से ऐसे भूखे लोगों की एक पूरी पीढ़ी देखेंगे, जो धीरे-धीरे भूख के कारण मौत के मुँह में पहुँच रहे हैं। उदाहरण हैं वे मज़दूर, जो पूँजीपतियों के लिए अपने घरों पर काम करते हैं; इसके अलावा कोई भी मज़दूर बीसियों दूसरे उदाहरणों को याद कर सकता है! दासप्रथा या भूदास प्रथा के अन्तर्गत भी मेहनतकश जनता का कभी इतना भयंकर उत्पीड़न नहीं हुआ, जितना कि पूँजीवाद के अन्तर्गत हो रहा है, जब मज़दूर प्रतिरोध नहीं कर पाते या ऐसे क़ानूनों का संरक्षण प्राप्त नहीं कर सकते, जो मालिकों की मनमानी कार्रवाइयों पर अंकुश लगाते हों।

इस तरह अपने को इस घोर दुर्दशा में पहुँचने से रोकने के लिए मज़दूर व्यग्रतापूर्वक संघर्ष शुरू कर देते हैं। मज़दूर यह देखकर कि उनमें से हरेक व्यक्तिश: सर्वथा असहाय है तथा पूँजी का उत्पीड़न उसे कुचल डालने का ख़तरा पैदा कर रहा है, संयुक्त रूप से अपने मालिकों के विरुद्ध विद्रोह शुरू कर देते हैं। मज़दूरों की हड़तालें शुरू हो जाती हैं। आरम्भ में तो मज़दूर यह नहीं समझ पाते कि वे क्या हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं, उनमें इस बात की चेतना का अभाव होता है कि वे अपनी कार्रवाई किस वास्ते कर रहे हैं : वे महज़ मशीनें तोड़ते हैं तथा फ़ैक्टरियों को नष्ट करते हैं। वे फ़ैक्टरी मालिकों को महज़ अपना रोष दिखाना चाहते हैं; वे अभी यह समझे बिना कि उनकी स्थिति इतनी असहाय क्यों है तथा उन्हें किस चीज़ के लिए प्रयास करना चाहिए, असह्य स्थिति से बाहर निकलने के लिए अपनी संयुक्त शक्ति की आज़माइश करते हैं।

तमाम देशों में मज़दूरों के रोष ने पहले छिटपुट विद्रोहों का रूप ग्रहण किया – रूस में पुलिस तथा फ़ैक्टरी मालिक उन्हें "ग़दर" के नाम से पुकारते हैं। तमाम देशों में इन छुटपुट विद्रोहों ने, एक ओर, कमोबेश शान्तिपूर्ण हड़तालों को और दूसरी ओर, अपनी मुक्ति हेतु मज़दूर वर्ग के चहुँमुखी संघर्ष को जन्म दिया।

मज़दूर वर्ग के संघर्ष के लिए हड़तालों (काम रोकने) का क्या महत्व है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें पहले हड़तालों की पूरी तस्वीर हासिल करनी चाहिए। जैसाकि हम देख चुके हैं, मज़दूर की मज़दूरी मालिक तथा मज़दूर के बीच क़रार द्वारा निर्धारित होती है और यदि इन परिस्थितियों में निजी तौर पर मज़दूर पूरी तरह असहाय है, तो ज़ाहिर है कि मज़दूरों को अपनी माँगों के लिए संयुक्त रूप से लड़ना चाहिए, वे मालिकों को मज़दूरी घटाने से रोकने के लिए अथवा अधिक मज़दूरी हासिल करने के लिए हड़तालें संगठित करने के वास्ते बाधित होते हैं। यह एक तथ्य है कि पूँजीवादी व्यवस्था वाले हर देश में मज़दूरों की हड़तालें होती हैं। सर्वत्र, तमाम यूरोपीय देशों तथा अमरीका में मज़दूर ऐक्यबद्ध न होने पर अपने को असहाय पाते हैं; वे या तो हड़ताल करके या हड़ताल करने की धमकी देकर केवल संयुक्त रूप से ही मालिकों का प्रतिरोध कर सकते हैं। ज्यों-ज्यों पूँजीवाद का विकास होता जाता है, ज्यों-ज्यों फ़ैक्टरियाँ अधिकाधिक तीव्र गति से खुलती जाती हैं, ज्यों-ज्यों छोटे पूँजीपतियों को बड़े पूँजीपति बाहर धकेलते जाते हैं, मज़दूरों द्वारा संयुक्त प्रतिरोध किये जाने की आवश्यकता त्यों-त्यों तात्कालिक होती जाती है, क्योंकि बेरोज़गारी बढ़ती जाती है, पूँजीपतियों के बीच, जो सस्ती से सस्ती लागत पर अपना माल तैयार करने का प्रयास करते हैं (ऐसा करने के वास्ते उन्हें मज़दूरों को कम से कम देना होगा), प्रतियोगिता तीव्र होती जाती है तथा उद्योग में उतार-चढ़ाव अधिक तीक्ष्ण तथा संकट* अधिक उग्र होते जाते हैं। जब उद्योग फलता-फूलता है, फ़ैक्टरी मालिक बहुत मुनाफ़ा कमाते हैं, परन्तु वे उसमें मज़दूरों को भागीदार बनाने की बात नहीं सोचते। परन्तु जब संकट पैदा हो जाता है, तो फ़ैक्टरी मालिक नुक़सान मज़दूरों के मत्थे मढ़ने का प्रयत्न करते हैं। पूँजीवादी समाज में हड़तालों की आवश्यकता को यूरोपीय देशों में हरेक इस हद तक स्वीकार कर चुका है कि उन देशों में क़ानून हड़तालें संगठित किये जाने की मनाही नहीं करता; केवल रूस में ही हड़तालों के विरुद्ध भयावह क़ानून अब भी लागू हैं (इन क़ानूनों और उनके लागू किये जाने के बारे में हम किसी और मौक़े पर बात करेंगे)।

कुछ भी हो, हड़तालें जो ठीक पूँजीवादी समाज के स्वरूप के कारण जन्म लेती हैं, समाज की उस व्यवस्था के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के संघर्ष की शुरुआत की द्योतक होती हैं। अमीर पूँजीपतियों का अलग-अलग, सम्पत्तिहीन मज़दूरों द्वारा सामना किया जाना मज़दूरों के पूर्ण दास बनने का द्योतक होता है। परन्तु जब ये ही सम्पत्तिहीन मज़दूर ऐक्यबद्ध हो जाते हैं, तो स्थिति बदल जाती है। यदि पूँजीपति ऐसे मज़दूर नहीं ढूँढ़ पायें, जो अपनी श्रम-शक्ति को पूँजीपतियों के औज़ारों और सामग्री पर लगाने और नयी दौलत पैदा करने के लिए तैयार हों, तो फिर कोई भी दौलत पूँजीपतियों

(पेज 13 पर जारी)

हड़तालों के बारे में

(पेज 12 से आगे)

के लिए लाभकर नहीं हो सकती। जब तक मज़दूरों को पूँजीपतियों के साथ निजी आधार पर सम्बन्ध रखना पड़ता है, वे ऐसे वास्तविक दास बने रहते हैं, जिन्हें रोटी का एक टुकड़ा हासिल कर सकने के लिए दूसरे को लाभ पहुँचाने के वास्ते निरन्तर काम करना होगा, जिन्हें हमेशा आज्ञाकारी तथा मूक उजरती नौकर बना रहना होगा। परन्तु जब मज़दूर संयुक्त रूप में अपनी माँग पेश करते हैं और थैलीशाहों के आगे झुकने से इन्कार करते हैं, तो वे दास नहीं रहते, वे इन्सान बन जाते हैं, वे यह माँग करने लगते हैं कि उनके श्रम से मुट्ठीभर परजीवियों का ही हितसाधन नहीं होना चाहिए, अपितु उसे इन लोगों को भी, जो काम करते हैं, इन्सानों की तरह जीवनयापन करने में सक्षम बनाना चाहिए। दास स्वामी बनने की माँग पेश करने लगते हैं – वे उस तरह काम करना और रहना नहीं चाहते, जिस तरह ज़मीन्दार और पूँजीपति चाहते हैं, बल्कि वे उस तरह काम करना और रहना चाहते हैं, जिस तरह स्वयं मेहनतकश जन चाहते हैं। हड़तालें इसलिए पूँजीपतियों में सदा भय पैदा करती हैं कि वे उनकी प्रभुता पर कुठाराघात करती हैं।

जर्मन मज़दूरों का एक गीत मज़दूर वर्ग के बारे में कहता है : "यदि चाहे तुम्हारी बलशाली भुजाएँ, हो जायेंगे सारे चक्के जाम"। और यह एक वास्तविकता है : फ़ैक्टरियाँ, ज़मीन्दार की ज़मीन, मशीनें, रेलें, आदि से एक विराट यंत्र के चक्के की तरह हैं, उस यंत्र की तरह, जो विभिन्न उत्पाद हासिल करता है, उन्हें परिष्कृत करता है तथा निर्दिष्ट स्थान को भेजता है। इस पूरे यंत्र को गतिमान करता है मज़दूर, जो खेत जोतता है, खानों से खनिज पदार्थ निकालता है, फ़ैक्टरियों में माल तैयार करता है, मकानों, वर्कशॉपों और रेलों का निर्माण करता है। जब मज़दूर काम करने से इन्कार कर देते हैं, इस पूरे यंत्र के ठप होने का ख़तरा पैदा हो जाता है। हरेक हड़ताल पूँजीपतियों को याद दिलाती है कि वे नहीं, वरन मज़दूर, वे मज़दूर वास्तविक स्वामी हैं, जो अधिकाधिक ऊँचे स्वर में अपने अधिकारों की घोषणा कर रहे हैं। हरेक हड़ताल मज़दूरों को याद दिलाती है कि उनकी स्थिति असहाय नहीं है, कि वे अकेले नहीं हैं। ज़रा देखें कि हड़तालों का स्वयं हड़तालियों पर तथा किसी पड़ोस की या नज़दीक की फ़ैक्टरियों में या एक ही उद्योग की फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों, दोनों पर कितना ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ता है। सामान्य, शान्तिपूर्ण समय में मज़दूर बड़बड़ाहट किये बिना अपना काम करता है, मालिक की बात का प्रतिवाद नहीं करता, अपनी हालत पर बहस नहीं करता। हड़तालों के समय वह अपनी माँगें ऊँची आवाज़ में पेश करता है, वह मालिकों को उनके सारे दुर्व्यवहारों की याद दिलाता है, वह अपने अधिकारों का दावा करता है, वह केवल अपने और अपनी मज़दूरी के बारे में नहीं सोचता, वरन अपने सारे साथियों के बारे में सोचता है, जिन्होंने उसके साथ-साथ औज़ार नीचे रख दिये हैं और जो तकलीफ़ों की परवाह किये बिना मज़दूरों के ध्येय के लिए उठ खड़े हुए हैं। मेहनतकश जनों के लिए प्रत्येक हड़ताल का अर्थ है बहुत सारी तकलीफ़ें, भयंकर तकलीफ़ें, जिनकी तुलना केवल युद्ध द्वारा प्रस्तुत विपदाओं से की जा सकती है – भूखे परिवार, मज़दूरी से हाथ धो बैठना, अक्सर गिरफ़्तारियाँ, शहरों से भगा दिया जाना, जहाँ उनके घर-बार होते हैं तथा वे रोज़गार पर लगे होते हैं। इन तमाम तकलीफ़ों के बावजूद मज़दूर उनसे घृणा करते हैं, जो अपने साथियों को छोड़कर भाग जाते हैं तथा मालिकों के साथ सौदेबाज़ी करते हैं। हड़तालों द्वारा प्रस्तुत इन सारी तकलीफ़ों के बावजूद पड़ोस की फ़ैक्टरियों के मज़दूर उस समय नया साहस प्राप्त करते हैं, जब वे देखते हैं कि उनके साथी संघर्ष में जुट गये हैं। अंग्रेज़ मज़दूरों की हड़तालों के बारे में समाजवाद के महान शिक्षक एंगेल्स ने कहा था : "जो लोग एक बुर्जुआ को झुकाने के लिए इतना कुछ सहते हैं, वे पूरे बुर्जुआ वर्ग की शक्ति को चकनाचूर करने में समर्थ होंगे।" बहुधा एक फ़ैक्टरी में हड़ताल अनेकानेक फ़ैक्टरियों में हड़तालों की तुरन्त शुरुआत के लिए पर्याप्त होती है। हड़तालों का कितना बड़ा नैतिक प्रभाव पड़ता है, कैसे वे मज़दूरों को प्रभावित करती हैं, जो देखते हैं कि उनके साथी दास नहीं रह गये हैं और, भले ही कुछ समय के लिए, उनका और अमीर का दर्जा बराबर हो गया है! प्रत्येक हड़ताल समाजवाद के विचार को, पूँजी के उत्पीड़न से मुक्ति के लिए पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष के विचार को बहुत सशक्त ढंग से मज़दूर के दिमाग़ में लाती है। प्राय: होता यह है कि किसी फ़ैक्टरी या किसी उद्योग की शाखा या शहर के मज़दूरों को हड़ताल के शुरू होने से पहले समाजवाद के बारे में पता ही नहीं होता और उन्होंने उसकी बात कभी सोची ही नहीं होती। परन्तु हड़ताल के बाद अध्ययन मण्डलियाँ तथा संस्थाएँ उनके बीच अधिक व्यापक होती जाती हैं तथा अधिकाधिक मज़दूर समाजवादी बनते जाते हैं।

हड़ताल मज़दूरों को सिखाती है कि मालिकों की शक्ति तथा मज़दूरों की शक्ति किसमें निहित होती है; वह उन्हें केवल अपने मालिक और केवल अपने साथियों के बारे में ही नहीं, वरन तमाम मालिकों, पूँजीपतियों के पूरे वर्ग, मज़दूरों के पूरे वर्ग के बारे में सोचना सिखाती है। जब किसी फ़ैक्टरी का मालिक, जिसने मज़दूरों की कई पीढ़ियों के परिश्रम के बल पर करोड़ों की धनराशि जमा की है, मज़दूरी में मामूली वृद्धि करने से इन्कार करता है, यही नहीं, उसे घटाने का प्रयत्न तक करता है और मज़दूरों द्वारा प्रतिरोध किये जाने की दशा में हज़ारों भूखे परिवारों को सड़कों पर धकेल देता है, तो मज़दूरों के सामने यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीपति वर्ग समग्र रूप में समग्र मज़दूर वर्ग का दुश्मन है और मज़दूर केवल अपने ऊपर और अपनी संयुक्त कार्रवाई पर ही भरोसा कर सकते हैं। अक्सर होता यह है कि फ़ैक्टरी का मालिक मज़दूरों की आँखों में धूल झोंकने, अपने को उपकारी के रूप में पेश करने, मज़दूरों के आगे रोटी के चन्द छोटे-छोटे टुकड़े फेंककर या झूठे वचन देकर उनके शोषण पर पर्दा डालने के लिए कुछ भी नहीं उठा रखता। हड़ताल मज़दूरों को यह दिखाकर कि उनका "उपकारी" तो भेड़ की खाल ओढ़े भेड़िया है, इस धोखाधाड़ी को एक ही वार में ख़त्म कर देती है।

इसके अलावा हड़ताल पूँजीपतियों के ही नहीं, वरन सरकार तथा क़ानूनों के भी स्वरूप को मज़दूरों की आँखों के सामने स्पष्ट कर देती है। जिस तरह फ़ैक्टरियों के मालिक अपने को मज़दूरों के उपकारी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं, ठीक उसी तरह सरकारी अफ़सर और उनके चाटुकार मज़दूरों को यह यक़ीन दिलाने का प्रयत्न करते हैं कि ज़ार तथा ज़ारशाही सरकार न्याय की अपेक्षानुसार फ़ैक्टरियों के मालिकों तथा मज़दूरों, दोनों का समान रूप से ध्यान रखते हैं। मज़दूर क़ानून नहीं जानता, उसका सरकारी अफ़सरों, ख़ास तौर पर ऊँचे पदाधिकारियों के साथ सम्पर्क नहीं होता, फलस्वरूप वह अक्सर इन सब बातों पर विश्वास कर लेता है। इतने में हड़ताल होती है। सरकारी अभियोजक, फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर, पुलिस और कभी-कभी सैनिक कारख़ाने में पहुँच जाते हैं। मज़दूरों को पता चलता है कि उन्होंने क़ानून तोड़ा है : मालिकों को क़ानून इकट्ठा होने और मज़दूरों की मज़दूरी घटाने और खुलेआम विचार-विमर्श करने की अनुमति देता है। परन्तु मज़दूर अगर कोई संयुक्त क़रार करते हैं, तो उन्हें अपराधी घोषित किया जाता है। मज़दूरों को उनके घरों से बेदख़ल किया जाता है, पुलिस उन दुकानों को बन्द कर देती है, जहाँ से मज़दूर खाने-पीने की चीज़ें उधार ले सकते हैं, उस समय भी जब मज़दूर का आचरण शान्तिपूर्ण होता है, सैनिकों को उनके ख़िलाफ़ भड़काने का प्रयत्न किया जाता है। सैनिकों को मज़दूरों पर गोली चलाने का आदेश दिया जाता है और जब वे भागती भीड़ पर गोली चलाकर निरस्त्र मज़दूरों को मार डालते हैं, तो ज़ार स्वयं सैनिकों के प्रति आभार-प्रदर्शन करता है (इस तरह ज़ार ने 1895 में यारोस्लाव्ल में हड़ताली मज़दूरों की हत्या करने वाले सैनिकों को धन्यवाद दिया था)। हर मज़दूर के सामने यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ज़ारशाही सरकार उसकी सबसे बड़ी शत्रु है, क्योंकि वह पूँजीपतियों की रक्षा करती है तथा मज़दूरों के हाथ-पाँव बाँध देती है। मज़दूर यह समझने लगते हैं कि क़ानून केवल अमीरों के हितार्थ बनाये जाते हैं, कि सरकारी अधिकारी उनके हितों की रक्षा करते हैं, कि मेहनतकश जनता की ज़ुबान बन्द कर दी जाती है, उसे इस बात की अनुमति नहीं दी जाती कि वह अपनी माँगें पेश करे, कि मज़दूर वर्ग को हड़ताल करने का अधिकार, मज़दूर समाचारपत्र प्रकाशित करने का अधिकार, क़ानून बनानेवाली और क़ानूनों को लागू करने के कार्य की देखरेख करने वाली राष्ट्रीय सभा में भाग लेने का अधिकार अवश्य हासिल करना होगा। सरकार ख़ुद अच्छी तरह जानती है कि हड़तालें मज़दूरों की आँखें खोलती हैं और इस कारण वह हड़तालों से डरती है तथा उन्हें यथाशीघ्र रोकने का प्रयत्न करती है। एक जर्मन गृहमंत्री ने, जो समाजवादियों तथा वर्ग-सचेत मज़दूरों को निरन्तर सताने के लिए बदनाम था, जन प्रतिनिधियों के सामने यह अकारण ही नहीं कहा था : "हर हड़ताल के पीछे क्रान्ति का कई फनोंवाला साँप (दैत्य) होता है"; प्रत्येक हड़ताल मज़दूरों में इस अवबोध को दृढ़ बनाती तथा विकसित करती है कि सरकार उनकी दुश्मन है तथा मज़दूर वर्ग को जनता के अधिकारों के लिए संघर्ष करने के वास्ते अपने को तैयार करना चाहिए।

अत: हड़तालें मज़दूरों को ऐक्यबद्ध होना सिखाती हैं; उन्हें बताती हैं कि वे केवल ऐक्यबद्ध होने पर ही पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष कर सकते हैं; हड़तालें मज़दूरों को कारख़ानों के मालिकों के पूरे वर्ग के विरुद्ध, स्वेच्छाचारी, पुलिस सरकार के विरुद्ध पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष की बात सोचना सिखाती है। यही कारण है कि समाजवादी लोग हड़तालों को 'युद्ध का विद्यालय', ऐसा विद्यालय कहते हैं, जिसमें मज़दूर पूरी जनता को, श्रम करने वाले तमाम लोगों को सरकारी अधिकारियों के जुए से, पूँजी के जुए से मुक्त करने के लिए अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ युद्ध करना सीखते हैं।

परन्तु "युद्ध का विद्यालय" स्वयं युद्ध नहीं है। जब हड़तालें मज़दूरों के बीच व्यापक रूप से फैली होती हैं, कुछ मज़दूर (कुछ समाजवादियों समेत) यह सोचने लगते हैं कि मज़दूर वर्ग अपने को महज़ हड़तालों, हड़ताल कोषों या हड़ताल संस्थाओं तक सीमित रख सकता है, कि अकेले हड़तालों के ज़रिए मज़दूर वर्ग अपने हालात में पर्याप्त सुधार ला सकता है, यही नहीं, अपनी मुक्ति भी हासिल कर सकता है। यह देखकर कि संयुक्त मज़दूर वर्ग में, यही नहीं, छोटी हड़तालों तक में कितनी शक्ति होती है, कुछ सोचते हैं कि मज़दूर पूँजीपतियों तथा सरकार से जो कुछ भी हासिल करना चाहते हैं, उसके लिए बस इतना काफ़ी है कि मज़दूर वर्ग पूरे देश में आम हड़ताल संगठित करे। इसी तरह का विचार अन्य देशों के मज़दूरों द्वारा भी व्यक्त किया गया था, जब मज़दूर वर्ग आन्दोलन अपने आरम्भिक चरणों में था तथा मज़दूर अभी बहुत अनुभवहीन थे। पर यह ग़लत विचार है। हड़तालें तो उन उपायों में से एक हैं, जिनके ज़रिए मज़दूर वर्ग अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करता है, परन्तु वे एकमात्र उपाय नहीं हैं। यदि मज़दूर संघर्ष करने के अन्य उपायों की ओर धयान नहीं देते, तो वे मज़दूर वर्ग की संवृद्धि तथा सफलताओं की गति धीमी कर देंगे। यह सच है कि यदि हड़तालों को कामयाब बनाना है, तो हड़तालों के दौरान मज़दूरों के निर्वाह के लिए कोषों का होना ज़रूरी है। ऐसे मज़दूर कोष (आम तौर पर उद्योग की पृथक शाखाओं, पृथक व्यवसायों तथा वर्कशॉपों में मज़दूर कोष) तमाम देशों में रखे जाते हैं। परन्तु यहाँ रूस में यह बहुत कठिन है, क्योंकि पुलिस उनका पता लगाती है, धन ज़ब्त कर लेती है तथा मज़दूरों को गिरफ़्तार करती है। निस्सन्देह, मज़दूर उन्हें पुलिस से छुपाने में सफल रहते हैं; स्वभावतया ऐसे कोषों को संगठित करना महत्तवपूर्ण है और हम मज़दूरों को उन्हें संगठित करने के विरुद्ध परामर्श नहीं देना चाहते। परन्तु यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि मज़दूर कोष क़ानून द्वारा निषिद्ध होने पर वे चन्दा देनेवालों को बड़ी संख्या में आकृष्ट करेंगे; और जब तक ऐसे संगठनों की सदस्य संख्या कम होगी, ये कोष बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं होंगे। इसके अलावा उन देशों तक में, जहाँ मज़दूर यूनियनें खुलेआम विद्यमान हैं तथा उनके पास बहुत बड़े कोष हैं, मज़दूर वर्ग संघर्ष के साधन के रूप में अपने को हड़तालों तक सीमित नहीं कर सकता। जो कुछ आवश्यक है, वह उद्योग के मामलों में एक विघ्न (उदाहरण के लिए संकट, जो रूस में आज समीप आता जा रहा है) है, और कारख़ानों के मालिक तो जानबूझकर हड़तालें तक करायेंगे, क्योंकि कुछ समय के लिए काम का बन्द होना तथा मज़दूर कोषों का घटना उनके लिए लाभप्रद होता है। इसलिए मज़दूर किसी भी सूरत में अपने को हड़ताल सम्बन्धी कार्रवाइयों तथा हड़ताल सम्बन्धी संस्थाओं तक सीमित नहीं कर सकते। दूसरे, हड़तालें वहीं सफल हो सकती हैं, जहाँ मज़दूर पर्याप्त रूप में वर्ग-सचेत होते हैं, जहाँ वे हड़तालें करने के लिए सही अवसर चुनने में सक्षम होते हैं, जहाँ वे यह जानते हैं कि अपनी माँगें किस तरह पेश की जाती

(पेज 6 पर जारी)

जिम्बाब्वे के प्रमुख कवि चेन्जेराई होव की चार कविताएँ

हम

केवल हम ही नहीं थे
पीछे छूट जाने वालों में,
अंजीर का पेड़ भी खड़ा था
हमारे साथ ही।
केवल हम ही नहीं थे
पीछे छूट जाने वालों में
जब तक कि आसमान
इन्कार करता रहा था
हमें वीज़ा देने में।
शुभ रात्रि, प्रिये
हम इन्तज़ार करेंगे यों ही
किसी और फूल के खिलने तक।

सत्ता

इस तरह पहन लेते हैं हम
सत्ता को :
सीटियों और बन्दूक़ों और बारूद के साथ
सुरक्षा सैनिक
जगमगाती रोशनियाँ
काँच की धुँधली खिड़कियाँ
क़तारें मोटरगाड़ियों की
ख़िताब, पदवियाँ
कम से कम हाथ मिलाना
कम से कम मुस्कुराना
कम से कम सन्ताप
हम पहन लिया करते हैं सत्ता को
बिल्कुल महामारी की तरह

इन्कार

पुलिस जब आ ही जाये ऐन सिर पर
और उसकी लाठी नृत्य करने लगे
तुम्हारी पीठ पर
इन्कार कर देना झुकने से।

बिच्छू जब आ ही जायें
और डंक मार दें चाहे
तुम्हारी आँखों और कानों पर
इन्कार कर देना उनके वश में आने से।
दुनिया जब घूमती नज़र आये गोल-गोल
यातना-कक्ष के भीतर
साफ़ इन्कार कर देना चाहिए
तुम्हारे दिल को मुरझाने से।

तुम सुनना बच्चों की आवाज़ों को
देखना रंगत हमारे संगीत की
और नाच उठना मन ही मन
समर्पण की मौत पर।

जिस क्षण शक्तिसम्पन्न लोग
लूटने में लगे हों तमगे
और अशक्त चुन रहे हों
तिनके शासन के,
तुम इन्कार कर देना घुटने टेकने से
फ़ुटपाथ पर छल और कपट के।

एक तानाशाह से

तुम्हारे दौर में
तुमने दूर कर दिया हमसे
हमारी स्वतंत्रता के सार को।

तुम्हारे दौर में
कमज़ोर लोगों ने हिफ़ाज़त की
तुम्हारी दुर्बलताओं की,

और धरती रोती रही लगातार,
चन्द्रमा तक स्याह पड़ गया था
तुम्हारे दौर में।

(एक पाकिस्तानी कवि की याद में,
जिसे देशनिकाला दे दिया गया था)

अंग्रेज़ी से अनुवाद :
राजेश चन्द्र

उपराष्ट्रपति महोदय, हम बताते हैं कि "शिक्षा के भगवाकरण में ग़लत क्या है"!

(पेज 7 से आगे)

इसलिए ला रहा है कि इसके नाम पर वह तर्क और शोध आधारित इतिहास को और विज्ञान को ख़ारिज कर सके और देश की जनता को कूपमण्डूक बना सके क्योंकि इसके बिना उन्मादी फ़ासीवादी भीड़ पैदा कर पाना नामुमकिन है। जर्मनी और इटली में भी किताबों की होली जलायी जाती थी। अगर हम इनकी साज़िश नहीं समझ पायेंगे तो भारत में भी सड़कों पर ऐसी होलियाँ जलायी जायेंगी और उनमें तर्क और इतिहास धू-धू करके जलते रहेंगे।

अगर उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू पूछते हैं कि शिक्षा के भगवाकरण में हर्ज़ ही क्या है तो इसका जवाब होगा कि ऐसे भगवाकरण से गली-गली में संघ के लम्पट पैदा होंगे जिनका रिमोट कण्ट्रोल बीजेपी और संघ के नेताओं के हाथ में होगा। जैसे ही ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, महँगाई और बीमारी से त्रस्त जनता सड़कों पर उतरेगी तो उन्हें सबक़ सिखाने, उनके बीच फूट डालने और उनकी एकता को बाँटने के लिए भगवा शिक्षा से पैदा रोबोट काम में लाये जायेंगे।

आज सवाल पूछा जाना चाहिए कि फ़ैक्टरियों और कारख़ानों में बारह से अठारह घण्टे काम करने के बाद भी देश की आम मेहनतकश जनता की प्रगति क्यों नहीं हो रही है? वहीं देश के पूँजीपति हर रोज़ अमीर कैसे होते जा रहे हैं? देश के पढ़े-लिखे नौजवान सड़कों पर हैं और बच्चों की बड़ी आबादी अनपढ़ है। क्या देश को स्कूल-कॉलेजों की ज़रूरत नहीं है? क्या इन जगहों पर देश के पढ़े-लिखे नौजवानों को नौकरी नहीं मिल सकती? क्या देश में अस्पतालों और डॉक्टरों की ज़रूरत नहीं है? तो फिर क्यों नये मेडिकल कॉलेज नहीं खोले जा रहे हैं? क्या देश को आवास, पुल, सड़क आदि की आवश्यकता नहीं हैं? क्या देश को आज लाखों-लाख इंजीनियरों की आवश्यकता नहीं है? तो फिर सड़कों पर क्यों इंजीनियर बिना रोज़गार भटक रहे हैं? शिक्षा का भगवाकरण नहीं बल्कि सबको शिक्षा और सबको रोज़गार और वैज्ञानिक व तर्कसंगत शिक्षा का नारा बुलन्द किया जाना चाहिए। शिक्षा को पूरी तरह धर्म से अलग करने का नारा बुलन्द किया जाना चाहिए।

अगर हम इन सवालों को पूछेंगे तो समझ पायेंगे कि क्यों उपराष्ट्रपति को शिक्षा के भगवाकरण से कोई आपत्ति नहीं है। शिक्षा का भगवाकरण उनके लिए पागल उन्मादियों की सेना पैदा करेगा जिसकी ज़रूरत आने वाले दिनों में पूँजी के गहराते संकट के साथ बढ़ने जा रही है।

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की तीन कविताएँ

कसीदा इन्क़लाबी के लिए

अक्सर वे बहुत अधिक हुआ करते हैं
वे ग़ायब हो जाते, बेहतर होता।
लेकिन वह ग़ायब हो जाये, तो उसकी कमी खलती है।

वह संगठित करता है अपना संघर्ष
मजूरी, चाय-पानी
और राज्यसत्ता की ख़ातिर।
वह पूछता है सम्पत्ति से :

कहाँ से आयी हो तुम?
जहाँ भी ख़ामोशी हो
वह बोलेगा
और जहाँ शोषण का राज हो
और क़िस्मत की बात की जाती हो
वह उँगली उठायेगा।

जहाँ वह मेज़ पर बैठता है
छा जाता है असन्तोष मेज़ पर
ज़ायका बिगड़ जाता है
और कमरा तंग लगने लगता है।

उसे जहाँ भी भगाया जाता है,
विद्रोह साथ जाता है और जहाँ से उसे भगाया जाता है
असन्तोष रह जाता है।

कसीदा द्वन्द्ववाद के लिए

बढ़ती जाती है नाइन्साफ़ी आज सधे क़दमों के साथ।
ज़ालिमों की तैयारी है दस हज़ार साल की।
हिंसा ढाढ़स देती है : जैसा है, रहेगा वैसा ही।
सिवाय हुक्मरानों के किसी की आवाज़ नहीं
और बाज़ार में लूट की चीख़ :
शुरुआत तो अब होनी है।
पर लूटे जाने वालों में से बहुतेरे कहने लगे हैं
जो हम चाहते हैं वो कभी होना नहीं।
गर ज़िन्दा हो अब तलक़, कहो मत : कभी नहीं
जो तय लगता है, वो तय नहीं है।
जैसा है, वैसा नहीं रहेगा।
जब हुक्मरान बोल चुके होंगे
बारी आयेगी हुक्म निभाने वालों की।
किसकी हिम्मत है कहने की : कभी नहीं?
ज़िम्मेदार कौन है, अगर लूट जारी है? हम ख़ुद।
किसकी ज़िम्मेदारी है कि वो ख़त्म हो? ख़ुद हमारी।
जिसे कुचला गया उसे उठ खड़े होना है।
जो हारा, उसे लड़ते रहना है।
अपनी हालत जिसने पहचानी, रोकेगा कौन उसे?
फिर आज जो पस्त हैं कल होगी उनकी जीत
और कभी नहीं के बजाय गूँजेगा : आज अभी।

कसीदा कम्युनिज़्म के लिए

यह तर्कसंगत है, हर कोई इसे समझता है। यह आसान है।
तुम तो शोषक नहीं हो, तुम इसे समझ सकते हो।
यह तुम्हारे लिए अच्छा है, इसके बारे में जानो।
बेवक़ूफ़ इसे बेवक़ूफ़ी कहते हैं और गन्दे लोग इसे गन्दा कहते हैं।
यह गन्दगी के ख़िलाफ़ है और बेवक़ूफ़ी के ख़िलाफ़।
शोषक इसे अपराध कहते हैं।
लेकिन हमें पता है :
यह उनके अपराध का अन्त है।
यह पागलपन नहीं
पागलपन का अन्त है।
यह पहेली नहीं है
बल्कि उसका हल है।
यह तो आसान-सी चीज़ है
जिसे हासिल करना मुश्किल है।

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट (1898-1956) : जर्मनी के प्रसिद्ध कवि, नाटककार

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

श्रीलंका और पाकिस्तान में नवउदारवादी पूँजीवादी आपदा का क़हर झेलती आम मेहनतकश आबादी

यह आर्थिक-राजनीतिक उथल-पुथल भारत सहित तमाम पूँजीवादी देशों के भविष्य का आईना है

आनन्द

वैसे तो आज के दौर में दुनियाभर की मेहनतकश जनता मन्दी, छँटनी, महँगाई, आय में गिरावट और बेरोज़गारी का दंश झेल रही है, लेकिन कुछ देशों में अर्थव्यवस्था की हालत इतनी ख़राब हो चुकी है कि वे या तो पहले ही कंगाल जो चुके हैं या फिर कंगाली के कगार पर खड़े हैं और उनका भविष्य बेहद अनिश्चित दिख रहा है। ये ऐसे देश हैं जिनकी अर्थव्यस्थाएँ या तो बहुत छोटी हैं या उनका औद्योगिक आधार बहुत व्यापक नहीं है जिसकी वजह से वे बेहद बुनियादी ज़रूरतों की चीज़ों के लिए भी आयात पर निर्भर हैं या फिर उनकी अर्थव्यवस्थाएँ दशकों से विदेशी क़र्ज़ों के चंगुल में फँसी हैं। हमारे पड़ोसी मुल्क श्रीलंका और पाकिस्तान भी ऐसे देशों की श्रेणी में शामिल हैं और जहाँ घनघोर आर्थिक संकट की अभिव्यक्ति राजनीतिक संकट के रूप में दिखने लगी है। बेशक मौजूदा रूस-यूक्रेन जंग और दो साल से जारी कोरोना वैश्विक महामारी की वजह से इन देशों में आर्थिक संकट सतह पर दिखने लगा है, लेकिन इस संकट की जड़ें इन देशों में पिछले कई दशकों के दौरान निर्मित निरंकुश नवउदारवादी पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक ढाँचे में निहित हैं। आज श्रीलंका और पाकिस्तान में संकट का जो भयावह रूप देखने में आ रहा है वह विश्व पूँजीवाद के भविष्य का आईना है।

श्रीलंका में जारी आर्थिक-राजनीतिक संकट

श्रीलंका में आर्थिक हालात इतने ख़राब हो चुके हैं कि वहाँ की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के लिए चावल, गेहूँ, दाल, दूध, चीनी जैसी बेहद बुनियादी ज़रूरत की चीज़ें ख़रीद पाना बेहद मुश्किल हो गया है। यही नहीं वहाँ जीवनदायी दवाओं तक की भी क़िल्लत हो गयी है। पेट्रोल और गैस भी आम आदमी की पहुँच के बाहर हो गये हैं और राजधानी कोलम्बो तक में 12 घण्टे की बिजली कटौती हो रही है। वहाँ काग़ज़ की इतनी क़िल्लत हो गयी है कि स्कूल-कॉलेजों में परीक्षा नहीं हो पा रही है। महँगाई की दर 19 प्रतिशत तक जा पहुँची हैं खाद्य पदार्थों की महँगाई 30 प्रतिशत के क़रीब पहुँच चुकी है जिससे यह साबित होता है कि श्रीलंका की जनता एक प्रकार की आपदा का सामना कर रही है। राशन, दूध, चीनी और दवा जैसी बुनियादी चीज़ों पर भी आयात पर निर्भर रहने वाले देश में विदेशी मुद्रा भण्डार ख़त्म होने की कगार पर है।

ग़ौरतलब है कि श्रीलंका में औद्योगिक विकास बेहद सीमित है, वहाँ चाय, कॉफ़ी, रबर, नारियल व मसालों जैसे प्राथमिक मालों और कुछ हद तक कपड़ों का ही निर्यात होता है। भारी आयात के लिए ज़रूरी विदेशी मुद्रा के लिए श्रीलंका की अर्थव्यवस्था पर्यटन और विदेशों में काम करने वाले नागरिकों द्वारा भेजे जाने वाले रेमिटेंस (विदेशी धनप्रेषण) पर निर्भर रहती है। लेकिन अप्रैल 2019 में कोलम्बों में चर्चों पर हुए भीषण आतंकवादी बम विस्फोटों और फिर अगले साल कोरोना महामारी की वजह से श्रीलंका में आने वाले पर्यटकों की संख्या में ज़बर्दस्त गिरावट हुई और महामारी की वजह से प्रवासी श्रीलंकाइयों की आमदनी में कटौती की वजह से रेमिटेंस में भी कमी आयी जिसकी वजह से आयात के लिए ज़रूरी विदेशी मुद्रा भण्डार की क़िल्लत होने लगी और जिसका नतीजा भुगतान सन्तुलन के संकट के रूप में सामने आया। यही नहीं इस दौरान श्रीलंका की मुद्रा का भी ज़बर्दस्त अवमूल्यन हुआ है जिसकी वजह से अन्य देशों से चीज़ें आयात करना और भी मुश्किल हो गया। इस संकट से निपटने के लिए श्रीलंका की सरकार को एक बार फिर आई.एम.एफ़ से लेकर भारत और चीन तक से क़र्ज़ लेना पड़ा है।

इस आर्थिक संकट के दौरान श्रीलंका की सरकार की कुछ आत्मघाती नीतियों ने संकट को आपदा में तब्दील करने का काम किया। मसलन गोटाबाया राजपक्षे सरकार ने 2019 के अन्त में सत्ता पर आसीन होने के बाद प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों की दरों में भारी कटौती कर दी जिसकी वजह से सरकारी ख़ज़ाना ख़ाली होने लगा और राजकोषीय घाटे में भारी बढ़ोतरी हुई। इसका सीधा नतीजा यह हुआ कि कोरोना महामारी के दौरान सरकार आम लोगों को बुनियादी ज़रूरतें तक नहीं पूरी कर सकी। इसके अलावा संकट के इस दौर में पिछले साल गोटाबाया राजपक्षे सरकार ने एक सनक-भरा फ़ैसला लेते हुए अचानक रासायनिक खादों और कीटनाशकों के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यह प्रतिबन्ध जैविक खेती को बढ़ावा देने के नाम पर किया गया। लेकिन बिना किसी तैयारी के थोप दिये गये इस फ़ैसले का नतीजा श्रीलंका के कृषि उत्पादन में 40 फ़ीसदी तक की गिरावट के रूप में सामने आया जिसकी वजह से छोटे-मँझौले किसान और खेतिहर मज़दूर त्राहि-त्राहि करने लगे। ग़ौरतलब है कि श्रीलंका में खाद्य संकट पैदा करने वाला यह सनक-भरा प्रतिबन्ध तब लगाया गया था जब कोरोना महामारी अपने चरम पर थी जिसकी वजह से बहुत-से लोग शहरों से गाँवों की ओर पलायन कर रहे थे और छोटी-मोटी खेतीबाड़ी करके अपना पेट पालने की जद्दोजहद कर रहे थे। रही-सही कसर रूस-यूक्रेन युद्ध की वजह से तेल की क़ीमतों में आये उछाल ने पूरी कर दी जिसकी वजह से श्रीलंका में महँगाई अपने चरम पर जा पहुँची और लोगों के सब्र का प्याला छलक पड़ा और वे सड़कों पर उतरकर राष्ट्रपति गोटाबाया राजपक्षे के इस्तीफ़े की माँग करने लगे। विरोध-प्रदर्शन उग्र होता देख सरकार को आर्थिक आपातकाल तक घोषित करना पड़ा। हालाँकि बाद में आपातकाल हटा लिया गया, लेकिन अभी भी राजपक्षे सरकार के भविष्य पर एक सवालिया निशान बरक़रार है और लोग यह कयास लगा रहे हैं कि राजपक्षे का हश्र भी इमरान ख़ान जैसा होगा।

उपरोक्त वजहें श्रीलंका की अर्थव्यवस्था के संकट की तात्कालिक वजहें हैं। लेकिन श्रीलंका के आर्थिक संकट की जड़ समझने के लिए हमें पिछले साढ़े 4 दशकों के दौरान निर्मित हुए निरंकुश नवउदारवादी पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक ढाँचे के इतिहास को समझना होगा। 1977 में श्रीलंका दक्षिण एशिया का पहला ऐसा देश बना जहाँ नवउदारवाद के प्रयोग की शुरुआत हुई। तत्कालीन श्रीलंकाई प्रधानमंत्री जे.आर. जयवर्धने ने 1973 के तेल झटके की वजह से हुए भुगतान सन्तुलन के संकट से निपटने के लिए अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ़.) से क़र्ज़ लिया जिसकी शर्तों को पूरा करते हुए में श्रीलंका की अर्थव्यव्यवस्था के उदारीकरण की शुरुआत की गयी। व्यापार सम्बन्धी नियंत्रण ढीले किये गये, खाद्य सब्सिडी में कटौती की गयी, मज़दूरी में कटौती की गयी और मौद्रिक व राजकोषीय नीति को सख़्त बनाया गया। उसके बाद जयवर्धने की सरकार ने 1979 से 1984 के बीच दो और बड़े क़र्ज़ लिये। नवउदारवादी नीतियों की वजह से जनता की ज़िन्दगी की बदहाली से ध्यान भटकाने के लिए सिंहला अन्धराष्ट्रवाद और तमिल अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ नफ़रत को हवा दी गयी जिसका नतीजा 1983 में राज्य द्वारा प्रायोजित तमिलों के भीषण नरसंहार के रूप में सामने आया। उसके बाद 26 सालों तक श्रीलंका गृहयुद्ध की आग में झुलसता रहा। इस दौरान सरकारी बजट का भारी हिस्सा रक्षा क्षेत्र की ओर निर्देशित किया गया जिसकी वजह से श्रीलंका की अर्थव्यवस्था की उत्पादकता में भारी गिरावट आयी और राजकोषीय घाटे में बढ़ोतरी हुई। 2009 में गृहयुद्ध के भीषण हिंसक अन्त के बाद महिन्दा राजपक्षे की सरकार ने एक बार फिर आई.एम.एफ़. से 2.6 बिलियन डॉलर का क़र्ज़ लिया। 2009 से 2012 के बीच श्रीलंका की अर्थव्यवस्था में उछाल आया जब सट्टेबाज़ वैश्विक वित्तीय पूँजी ने श्रीलंका की ओर रुख़ किया, परन्तु 2012 में विश्व बाज़ार में प्राथमिक मालों की क़ीमतों में गिरावट से श्रीलंका की अर्थव्यवस्था डगमगाने लगी और उसके बाद से श्रीलंका के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में गिरावट लगातार जारी है। 2016 में श्रीलंका ने 16वीं बार आई.एम.एफ़ से क़र्ज़ लिया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि पिछले साढ़े 4 दशकों के दौरान श्रीलंका की अर्थव्यवस्था लगातार आई.एम.एफ़. द्वारा दिये गये क़र्जों के चंगुल में फँसती गयी है और उसका स्वतंत्र औद्योगिक विकास नहीं हो सका है जिसकी वजह से आयात पर उसकी निर्भरता लगातार बढ़ती गयी है। इस दौरान आर्थिक कट्टरपन्थी नीतियों के ही अनुरूप श्रीलंका की सत्ता अधिकांशत: दक्षिणपन्थी निरंकुश शासकों के हाथ में रही है जिनकी सनक-भरी नीतियों ने वहाँ की मेहनतकश अवाम का जीना दूभर कर दिया है।

पाकिस्तान में जारी आर्थिक-राजनीतिक उथल-पुथल

जिस समय श्रीलंका के आर्थिक संकट की ख़बरें अन्तरराष्ट्रीय मीडिया की सुर्ख़ियों में आनी शुरू हुईं ठीक उसी समय पाकिस्तान में जारी नाटकीय राजनीतिक और संवैधानिक संकट की पटकथा भी लिखी जा रही थी। मार्च के अन्त में पाकिस्तान के समूचे विपक्ष ने एकजुट होकर वहाँ की नेशनल असेम्बली में इमरान ख़ान की सरकार के ख़िलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया। यहाँ तक कि सत्तारूढ़ पाकिस्तान तहरीक़े इन्साफ़ पार्टी के कई सदस्य भी विपक्ष में जा मिले जिसके बाद इमरान ख़ान की सरकार का गिरना तय हो गया। परन्तु 3 अप्रैल को एक नाटकीय घटनाक्रम में इस अविश्वास प्रस्ताव पर वोटिंग से पहले ही उपसभापति ने प्रस्ताव को ख़ारिज कर दिया और उसके बाद इमरान ख़ान की सिफ़ारिश पर राष्ट्रपति आरिफ़ अल्वी ने नेशनल असेम्बली भंग कर दी और चुनाव की तैयारी का ऐलान कर दिया गया। इस प्रकार पाकिस्तान में एक संवैधानिक संकट खड़ा हो गया। इसके बाद विपक्ष ने उच्चतम न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया जिसने नेशनल असेम्बली को फिर से बहाल कर दिया और अविश्वास प्रस्ताव की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का हुक्म दिया। 9 अप्रैल की रात को नेशनल असेम्बली में अविश्वास प्रस्ताव के बहुमत से पारित होने के बाद अन्तत: इमरान ख़ान की सरकार गिर गयी।

ग़ौरतलब है कि इमरान ख़ान की पार्टी तहरीक़े इन्साफ़ के सत्ता में आने के पीछे पाकिस्तानी सेना का बहुत बड़ा हाथ था क्योंकि सेना पुरानी पार्टियों और नेताओं के बदले नयी पार्टी और नये नेता पर अपना दाँव लगाना चाहती थी ताकि वह अपने मनमुताबिक़ नीतियाँ बनवा सके। साथ ही इमरान ख़ान को मध्यवर्ग के एक हिस्से का भी समर्थन प्राप्त था जो उनके भ्रष्टाचार-मुक्त नये पाकिस्तान के खोखले नारे पर मोहित था। परन्तु सत्ता में आने के बाद इमरान ख़ान और सेना के बीच कई मुद्दों पर मतभेद उभरने लगे। ये मतभेद पाकिस्तानी ख़ुफ़िया एजेंसी आईएसआई के मुखिया की नियुक्ति और विदेश नीति जैसे मसलों पर खुलकर सामने आये। ऐसी भी ख़बरें सामने आयीं कि इमरान ख़ान अपनी पसन्द के किसी सैन्य अधिकारी को सेना प्रमुख बनाना चाहते हैं। रूस-यूक्रेन युद्ध में इमरान ख़ान का रूस की ओर स्पष्ट झुकाव भी सेना को गवारा नहीं था क्योंकि वह अमेरिका के साथ अपने पुराने प्रगाढ़ रिश्ते को बिगाड़ना नहीं चाहती है।

ग़ौरतलब है कि आज़ादी के बाद पाकिस्तान में जिस विशिष्ट तरीक़े से पूँजीवादी विकास हुआ उसका नतीजा यह हुआ कि वहाँ पूँजीपति वर्ग का बड़ा हिस्सा सैन्य पृष्ठभूमि से आता है। वहाँ के कई प्रमुख उद्योग सेना द्वारा संचालित ट्रस्टों द्वारा चलाये जाते हैं और तमाम सेवानिवृत्त सैन्य अधिकारी उद्योगों में पूँजी निवेश करते हैं। पाकिस्तान के पहले सैन्य तानाशाह अयूब ख़ान

(पेज 11 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, ातगंज, लखनऊ-226006